
चन्दामामा
बच्चों का मासिक पत्र
1st Mar. '60
50
NAYE PAISE
8
AS



पाँचवे दिन सूर्योदय तक दोनों तरफ़ की सेनायें युद्ध के लिए सन्नद्ध हो युद्ध भूमि में आ गई।

भीष्म ने कौरव सेना को मकर व्यूह में व्यवस्थित किया, और पाण्डव सेना श्वेन व्यूह में व्यवस्थित हुई। भीम फिर पाण्डव सेना के सामने खड़ा हुआ।

युद्ध के आरम्भ होते ही भीम और भीष्म की मुटभेड़ हुई। दोनों पक्षों में जोश उमड़ आया। युद्ध सहसा महा भयङ्कर हो गया।

भीष्म ने पाण्डव सेना का नाश करने का निश्चय किया। अर्जुन ने उसको रोकने का प्रयत्न किया।

भीष्म को उस तरह युद्ध करता देख दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने द्रोण से कहा-"आचार्य! जब तक आप और भीष्म हैं, हमें देवताओं का भी भय नहीं है। इन पाण्डवों की तो बात ही नहीं उठती। आप कोई ऐसा उपाय कीजिये कि वे सब आसानी से मारे जा सकें।"

द्रोण भी पाण्डव सेना के विनाश में लग गया। यह देख सात्यकी को गुस्सा आ गया। उसने द्रोण का बिरोध किया। दोनों में घोर युद्ध हुआ। द्रोण ने सात्यकी के घुटने तोड़ दिये।

भीम सात्यकी की रक्षा के लिए द्रोण से लड़ने लगा। उसकी सहायता के लिए अभिमन्यु और उपपाण्डव आये। भीष्म और द्रोण ने मिलकर युद्ध करना शुरु किया।

इतने में शिखण्डी आया। भीष्म ने अपने नियम के अनुसार शिखण्डी पर बाण

नहीं छोड़े। पर जब द्रोण ने शिखण्डी पर बाण छोड़े तो सात्यकी भाग गया।

फिर दोनों पक्षों में भीषण युद्ध हुआ। पाण्डव सेना के कई सैनिक भीष्म द्वारा घायल किये गये, मारे गये। युद्ध बीभत्स हो उठा। भूमि आयुधों से, मुरदों से, और आकाश धूल और चीत्कार से भर उठे। रक्त की नदियाँ बहने लगीं। जब योद्धाओं के पास अस्त्र न रहे, तो वे मुक्का-मुक्की करने लगे। इन युद्धों के अतिरिक्त दोनों पक्षों के कई योद्धाओं में द्वन्द्व युद्ध भी होने लगा। युद्ध की भयङ्करता निरन्तर बढ़ती जाती थी।

एक बार सात्यकी पर भीष्म ने बड़ी चोट की। उसका सारथी भीष्म के बाण के कारण मर गया। सात्यकी के घोड़े रथ को खींचते भागने लगे। पाण्डवों ने हाहाकार किया।

अश्वत्थामा और अर्जुन में भी युद्ध हुआ। अर्जुन के बाणों के कारण अश्वत्थामा खून से तरबतर हो गया, पर वह अविचलित रहा। उसने कृष्ण और अर्जुन को अपना रौद्र रूप दिखाया। कौरव उसे उस प्रकार लड़ता देखकर बहुत खुश हुए।



एक बार लक्ष्मण कुमार और अभिमन्यु में द्वन्द्व युद्ध हुआ। लक्ष्मण ने तो अच्छी तरह युद्ध किया, पर उसके सारथी और घोड़े मारे गये। फिर भी लक्ष्मण लड़ता रहा। उसने जब अभिमन्यु पर भयङ्कर शक्ति छोड़ी तो अभिमन्यु ने उसको अपने बाणों से तुरत काट दिया। इतने में कृपा आया और उसको अपने रथ में बिठाकर वह ले गया।

उस दिन शाम को सात्यकी को कौरव सेना का नाश करता देख दुर्योधन ने उस पर आक्रमण करने के लिए रथ सेना भेजी।

सात्यकी अपने तेज बाणों से उस सेना का भी नाश करने लगा, यह देख मूरिश्रव ने सात्यकी पर हमला किया। जो सात्यकी की सहायता कर रहे थे, वे उसका मुकाबला न कर सके, और रणभूमि छोड़कर भाग गये।

तब सात्यकी के पुत्र चित्रवर्मा आदि ने आकर भूरिश्रव से पूछा-" क्या हम में से किसी एक से लड़ोगे या हम सब से लड़ोगे?" भूरिश्रव महावीर था। उसने कहा कि मैं सब से लड़ूँगा। उन सब ने एक साथ भूरिश्रव पर बाण छोड़े। भूरिश्रव ने केवल उनके बाण काटे ही नहीं, परन्तु सात्यकी के लड़कों को एक एक करके मार दिया।

सात्यकी आगबबूला हो गया। उसने भूरिश्रव से भयङ्कर युद्ध किया। इस युद्ध में दोनों के धनुष और रथ नष्ट कर दिये गये। घोड़े भी मारे गये। जब वे दोनों तलवार लेकर आपस में लड़ रहे थे, तो भीम उस तरफ रथ में आया, और उसने सात्यकी को रथ में बिठा लिया। और दुर्योधन ने आकर भूरिश्रव को अपने रथ में बिठा लिया। इसके कुछ देर बाद



सूर्यास्त हो गया। उस दिन का युद्ध समाप्त हुआ।

रात बीती। सवेरे फिर दोनों सेनायें युद्ध के लिए तैयार हो गई। उस दिन पाण्डव सेना मकर व्यूह में और कौरव सेना कौञ्च व्यूह में व्यवस्थित थीं।

प्रारम्भ में द्रोण और भीम का मुकाबला हुआ। जब द्रोण ने भीम के मर्मस्थलों पर बाण मारें तो भीम ने गुस्से में द्रोण के सारथी को एक बाण से मार दिया। महायोद्धा द्रोण अपना रथ स्वयं चलाने लगा और साथ साथ भयङ्कर युद्ध भी करता गया।

फिर भीम में इतना जोश आ गया कि यह दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों पर टूट पड़ा। जब उसको सब एक साथ दिखाई दिये तो भीम को भीष्म का भय भी जाता रहा। वह अकेला ही कौरव सेना में घुस गया।

यह देख सबने भीम को जीते जी पकड़ लेना चाहा। दुश्शासन, दुर्विषह दुस्सह, दुर्मद, जय, जयसेन, विकर्ण, चित्रसेन, सुदर्शन, सुवर्मा, चारुचित्र, दुष्कर्ण आदियों ने चारों ओर भीम को घेर लिया। उस व्यूह में फँसकर भी भीम न डरा।





उसे पता था कि वे उसे पकड़ने का प्रयत्न कर रहे थे। वह कोपाविष्ट हो उन पर हमला करने लगा।

यह जान कि भीम ने बदला लेने का निश्चय कर लिया था, धृष्टद्युम्न ने द्रोण से युद्ध करना छोड़ दिया और वह भीम के रथ के पास आया। रथ को खाली पा उसका माथा ठनका। उसने काँपती हुई आवाज में भीम के सारथी से पूछा-"विशोक, भीम कहाँ है?"

"महाराज! मुझे कुछ देर यहाँ ठहरने के लिए कह वे धृतराष्ट्र के लड़कों को मारने के लिए कौरव सेना में जा घुसे हैं।" विशोक ने कहा।

"भीम को खोकर मेरे जीवित रहने का क्या अर्थ है?" सोचकर धृष्टद्युम्न जब आगे बढ़ रहा था तो थोड़ी दूरी पर भीम अपनी गदा से हाथियों को मारता, रथों को चूरचूर करता, गर्जन करता आगे बढ़ता दिखाई दिया। उसके चारों ओर हाहाकार हो रहा था, और उसके सारे शरीर पर बाण ही बाण थे।

धृष्टद्युम्न ने भीम को अपने रथ पर बिठा लिया। उसके शरीर के बाण निकालकर उसको गले लगा लिया। इतने में दुर्योधन और उसके भाई यह देख धृष्टद्युम्न पर टूट पड़े। धृष्टद्युम्न ने उन सब को एक साथ देखकर सम्मोहनास्त्र छोड़ा और दुर्योधनादि को मूर्छित कर दिया।

इतने में द्रोण को मालूम हुआ कि दुर्योधन आदि सब मूर्च्छित पड़े थे। वह तब द्रुपद से लड़ रहा था। लड़ना छोड़ वह दुर्योधन आदि के पास आया। प्रज्ञास्त्र छोड़कर उसने सम्मोहनास्त्र के प्रभाव को समाप्त कर दिया। इसके परिणामस्वरूप सब होश में आ गये। उठकर फिर उन्होंने

भीम से लड़ना शुरु किया। भीम और दुर्योधन में भयङ्कर युद्ध हुआ। तब तक दुपहर हो चुकी थी।

इस बीच भीम की सहायता के लिए युधिष्ठिर ने बारह योद्धाओं, अभिमन्यु धृष्टकेतु, कैकेय, उपपाण्डव आदि को भेजा। उनको आता देख कौरव पीठ दिखाकर चले गये। भीम को उस दिन बड़ा खेद हुआ कि वे उसके हाथ नहीं मारे गये थे।



दुपहर के बाद शाम तक दोनों तरफ के वीरों में घमासान युद्ध हुआ। एक तरफ भीष्म यदि पाण्डव सेना का निर्मूलन कर रहा था तो दूसरी तरफ अर्जुन कौरव सेना का तहस नहस कर रहा था।

सूर्यास्त हो रहा था कि भीम और दुर्योधन में फिर भिड़न्त हुई। भीम ने बिजली जैसे बाणों का दुर्योधन पर उपयोग किया। उसके सारथी और घोड़ों को मार दिया। उसकी ध्वजा आदि को भी तोड़ दिया। परन्तु इतने में कृपा ने आकर दुर्योधन को अपने रथ पर बिठा लिया। दुर्योधन बुरी तरह घायल हो गया था।

फिर सैन्धव ने आकर भीम के साथ युद्ध किया। अभिमन्यु आदि जो भीम की रक्षा करने आये थे, वे दुर्योधन के भाइयों से लड़ने लगे। दुर्योधन के भाइयों में से विकर्ण अभिमन्यु के बाणों का शिकार हुआ।

श्रुतवर्मा ने दुर्मुख को मार दिया। दुष्कर्ण नकुल के पुत्र शतानीक से लड़ता लड़ता मारा गया। और उस दिन का युद्ध समाप्त हो गया।

दोनों तरफ के योद्धा अपने अपने शिविरों में जाकर युद्ध के बारे में चर्चा

करने लगे। एक दूसरे के पराक्रम की प्रशंसा करने लगे।

क्योंकि उस दिन के युद्ध में दुर्योधन बुरी तरह घायल हो गया था, इसलिए वह चिन्तित था। उसने भीष्म के पास आकर

कहा-"बाबा, पाण्डव हमारे अभेद्य से अभेद्य व्यूह को भी तोड़ रहे हैं। आज भीम ने मुझे बहुत तङ्ग किया। हमारी सेना का भी उसने बहुत संहार किया। मैं युद्धभूमि में ही मूर्छित हो गया। अब तक मेरा मन शान्त नहीं हुआ है। जब तक आपकी कृपा न होगी, तब तक में इन पाण्डवों पर विजय न पा सकूँगा। उनको नष्ट न कर सकूँगा।"

भीष्म जान गया कि दुर्योधन बहुत चिन्तित था, इसलिए उसको आश्वासन देने के लिए उसने यों कहा-"राजा, तुम्हें विजयश्री मिले, इसलिए मैं जी जान से पाण्डवों से लड़ रहा हूँ। मुझे अपने शरीर की भी परवाह नहीं है। पाण्डव शूर हैं। महारथ हैं। अस्त्रों का उपयोग जानते हैं। उनको जीतना सरल नहीं है। फिर भी मैं पूरी तरह उनका मुकाबला कर रहा हूँ। आगे भी इसी तरह लड़ता रहूँगा। मैं ही नहीं द्रोण, शल्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, सोमदत्त, सैन्धव, विन्दानुविन्द तुम्हारे लिए अपने प्राण न्योछावर करने के लिए तैयार हैं। अन्त में पाण्डव मुझे जीतेंगे या मैं पाण्डवों को, यह मैं ठीक ठीक नहीं कह सकता।"

दुर्योधन से यह कहकर उसका दुख शान्त करने के लिए भीष्म ने विशल्यकरणी नाम की औषधी दी।





[२]

[धवलगिरि का राजकुमार चित्रसेन वन में शिकार खेलने गया। वहाँ उसने एक गुफा में एक सिद्धपुरुष देखा। उस सिद्ध ने उसको एक बाँस की टोकरी दी। उस टोकरी का ढक्कन हटाते ही एक महल दिखाई दिया। तभी उग्राक्ष राक्षस भी आया। जीते जी बचने के लिए चित्रसेन ने वचन दिया कि वह अपने पहले लड़के को राक्षस के हाथ सौंप देगा। बाद में--]

उग्राक्ष जब पेड़ की आड़ में ओझल हो गया, तो चित्रसेन ने सोचा कि जान बची लाख पाये। उसने निश्वास छोड़ा। जैसे भी हो वह मौत के मुँह से बाहर निकल गया था। अब उसे भयङ्कर जङ्गल से बाहर होना था, धवलगिरि पहुँचना था। घर जाना था।

चित्रसेन कुछ सोचता उठ खड़ा हुआ। उसने पश्चिम की ओर देखा। सूर्य के छुपने में देरी न थी। सामने गगनचुम्बी महल पर सूर्य का लाल-लाल प्रकाश पड़ रहा था। उस प्रकाश में महल की मीनारें चमचमा रही थीं।

"कितना सुन्दर महल है! अब इस में जङ्गली जानवर, चमगादड़, उल्लू ही तो रहेंगे।" सोचते सोचते चित्रसेन ने अपनी नजर दूसरी ओर फेरी और निरुत्साहित हो चल पड़ा।



वह अभी दो कदम आगे गया था कि किसी ने पीछे से बुलाया- "महाराज! महाराज!"

"कौन है महाराज? इस बीयाबान जङ्गल में कैसे यह मनुष्य का स्वर?" चित्रसेन ने आश्चर्य से पीछे मुड़कर देखा। उसको कीमती कपड़े पहने तीन व्यक्ति और उनके पीछे कुछ सैनिक दिखाई दिये।

चित्रसेन इस आश्चर्यजनक दृश्य को देखकर कुछ कहनेवाला था कि कीमती कपड़े पहने हुए व्यक्तियों में से एक ने आगे बढ़कर उसको नमस्कार किया।

"महाराज, जब बहुत देर तक आप राजमहल न आये तो हमने साथ जङ्गल छान डाला। आखिर आपसे हम यहाँ मिले।" उसने कहा।

"मैं? महाराज?" चित्रसेन ने आश्चर्य प्रकट किया।

चित्रसेन के इस प्रकार कहने पर उस व्यक्ति ने, जो सामने आया था, पीछे मुड़कर कहा-"सेनापति, महाराज बहुत थके हुए मालूम होते हैं। कहार कहाँ हैं? बुलाओ ।\"

"मन्त्री जी, आपने कहा था न कि जब तक मेरी आज्ञा न हो, तब तक उनको पेड़ों के पीछे रखो।" कहकर सेनापति वहाँ से कुछ दूर गया और उसने तालियाँ बजाई। तुरन्त जवाब मिला-"हुजूर, आ रहे हैं।" फिर फौरन पालकी उठाये, चार हट्टे-कट्टे कहार चित्रसेन के पास आये।

वह व्यक्ति, जिसको सेनापति ने मन्त्री कहकर सम्बोधित किया था, सगौरव चित्रसेन के पास आया। उसने झुककर नमस्कार करके कहा-"महाराज! पालकी मँगवाई है। बैठिये।

आपको कोई कष्ट न होगा। ये कहार आपको पालकी में महल के शयनकक्ष में सुरक्षित ले जाएँगे।"

मन्त्री के यह कहते ही चित्रसेन को सचमुच लगा जैसे उसे बहुत थकान आ गई हो, और कदम उठाकर भी न रख पा रहा हो। इसलिए उसने कुछ न कहा। और पालकी में जाकर बैठ गया।

"ॐ...." मन्त्री ने कहारों को ईशारा किया और उसके पास आकर जिस आदमी ने कान में कुछ कहा था, उससे कहा-"कोशाधिकारी, हमें क्षमा करो। महाराज के लिए विश्राम आवश्यक है। इसलिए मौका मिलने पर इस विषय के बारे में बातचीत की जा सकती है।"

पालकी में बैठने के बाद चित्रसेन के कान में जब यह बातचीत पड़ी तो उसने सोचा-"ओहो, मेरे पास महल ही नहीं मन्त्री, सेनापति, कोशाधिकारी आदि भी हैं।" उसे बड़ा अचरज हुआ। पर वह सोचता गया।

थोड़ी देर में कहारों ने चित्रसेन को महल की सब से ऊपर की मञ्जिल



में एक बड़े कमरे के पास उतार दिया। जब पालकी से उतरकर वह कमरे में गया, तो उसने देखा कि फर्श पर बहुत कीमती कालीन बिछे हुए थे। गद्देदार पलङ्ग थे। उसे आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर तो वह सोचता स्तब्ध खड़ा रहा कि वह स्वप्न था या वास्तविक दृश्य।

यह सब उस सिद्ध पुरुष की महिमा है, चित्रसेन ने सोचा। यह व्यक्ति जो एक बाँस की टोकरी में इतना बड़ा महल रख सकता था, उसके लिए राजोचित सुख-सुविधाओं की व्यवस्था करना, मन्त्री,

सेनापति, नौकर-चाकरों का नियुक्त करना कोई बड़ी बात नहीं है।

जब वह उस सिद्ध के बारे में यों कृतज्ञतापूर्वक सोच रहा था कि उसने देखा कि उसके लिए स्वादिष्ट, पौष्टिक भोजन लाया जा रहा था। वह तो दुपहर से भूख से मरा जा रहा था, इसलिए उसने पेट भर खाना खाया। फिर गद्दे पर आराम से लेटकर आगे क्या करना था उस के बारे में सोचने लगा।

इसी उधेड़बुन में चित्रसेन सो गया। जब वह उठा तो उसने देखा कि कमरे के झरोखे से सूर्य की किरणें अन्दर आ रही थीं। वह जान गया कि उसने उस कमरे में एक रात काट दी थी और अब सूर्य उदय हो रहा था।

वह पलङ्ग से उठा। नित्यकृत्य से निवृत्त होकर कमरे से बाहर निकला तो उसने मन्त्री को देखा। "महाराज! आप रात को आराम से सोये तो! आदेश हो तो राज्यकार्य के बारे में निवेदन करूँ?" मन्त्री ने पूछा।

राज्य के बारे में या तत्सम्बन्धित कार्य के बारे में चित्रसेन कुछ भी न

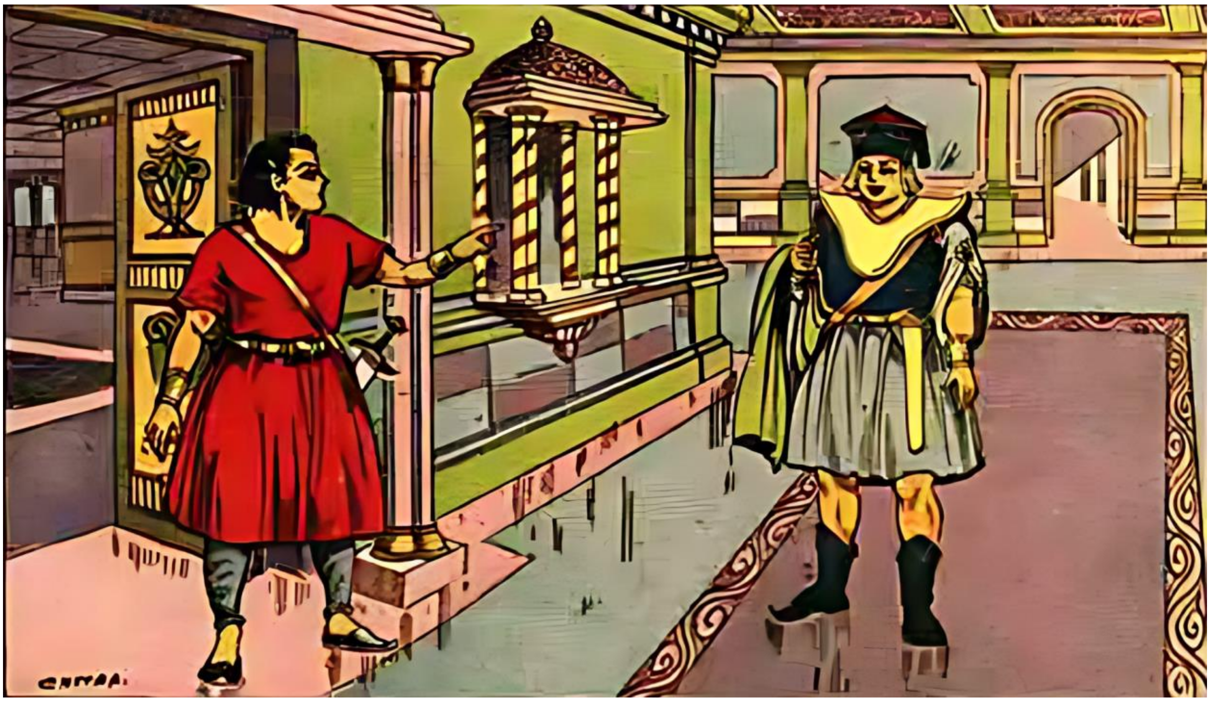


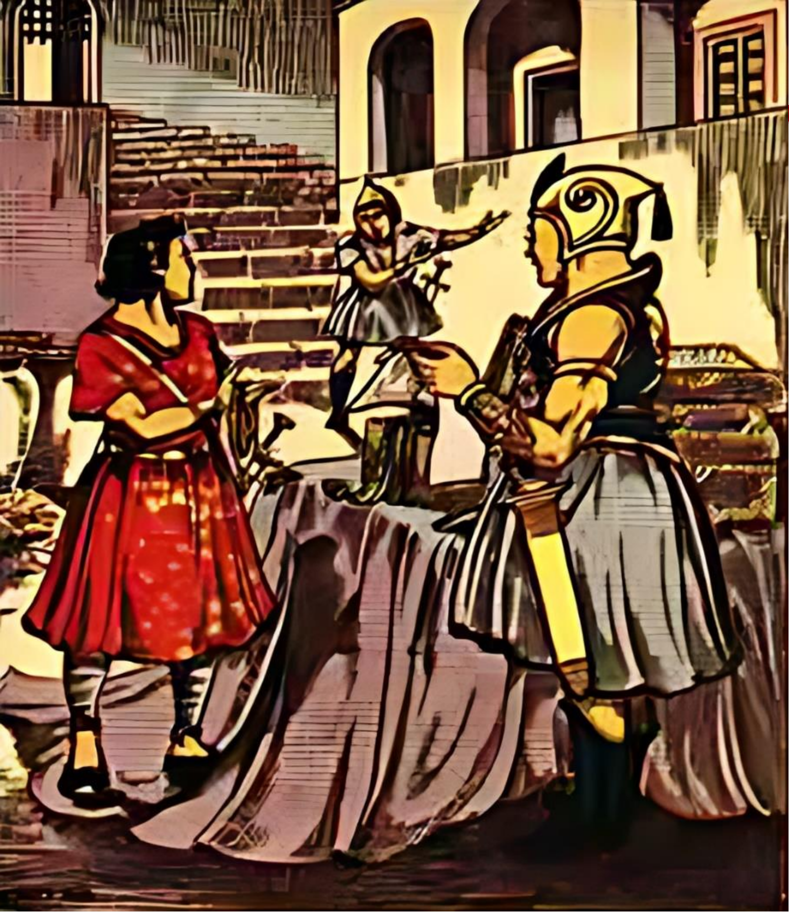
जानता था। धवलागिरि का परिपालन उसके पिता कर रहे थे। उनके बाद राज्य का अधिकारी, उसका भाई शूरसेन था। उसने कभी राज्य सम्बन्धी कार्यों में कोई अभिरुचि न दिखाई थी। परन्तु मन्त्री के राज्य के विषय में कहते ही उसको अपने माता-पिता याद हो आये। "अगर भाई शूरसेन सुरक्षित धवलगिरि पहुँच गया तो माता-पिता मेरे बारे में बहुत चिन्तित होंगे। इसलिए यह आवश्यक है कि मैं उनको अपने कुशल-क्षेत्र के विषय में समाचार भिजवाऊँ?"

चित्रसेन ने यह सोचकर कहा-"आप शायद धवलगिरि के बारे में जानते ही होंगे। उसके राजा तारकेश्वर को खबर भेजिये कि में यहाँ सुरक्षित हूँ। शेष बातें समय मिलने पर सोची-विचारी जा सकती हैं।"

"जी! मैं खबर भिजवा दूँगा। कोशाधिकारी ने धन व बहुमूल्य वस्तुओं की सूची बनाई है। आपकी आज्ञा हो तो उसको सूची के साथ समक्ष उपस्थित होने के लिए कहूँ।" मन्त्री ने कहा।

"उसको यहाँ आने की आवश्यकता नहीं है। यह कफी है कि वह सूची





भेज दे।" चित्रसेन ने कहा। मन्त्री चला गया।

कुछ समय बाद नौकर ने चित्रसेन को सूची लाकर दी। खजाने के धन, बहुमूल्य रत्न, सोने के आभूषणों के बारे में विवरण पढ़कर चित्रसेन चकित रह गया। उसने सोचा कि उतना धन उसके पिता के पास भी न था।

जब शाम को वह खजान्ची के साथ बहुमूल्य वस्तुओं का निरीक्षण कर रहा था, तो एक नौकर ने आकर उसे बताया कि उसके पिता तारकेश्वर वहाँ आये हुए थे।

तुरन्त चित्रसेन महल के सामने आया। उसने अपने पिता को देखा।

लड़के को देखकर राजा तारकेश्वर ने उसको खुशी से गले लगा लिया। "बेटा, तेरे भाई के मुँह जो मैंने सुना, उसके अनुसार मेरा ख़याल था कि कोई जानवर तुम्हें निगल गया होगा। परन्तु तुम्हें इस रईसी ठाटबाठ में देखकर मुझे बड़ी खुशी हो रही है। जैसे यहाँ के कुछ कर्मचारियों ने बताया है, क्या तुम सचमुच इस प्रदेश के राजा हो? क्या यह आश्चर्यजनक महल तुम्हारा ही है?"

चित्रसेन ने सिर हिलाया।

"परन्तु तुम्हें इतना बड़ा पद इतनी आसानी से कैसे मिल गया? जो राजा पहले इस राजमहल में रहा करता था उसका क्या हुआ?" तारकेश्वर ने कुतूहलवश अपने पुत्र से पूछा।

"ये सब बातें आपको एकान्त में बताऊँगा। ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जिनको मेरे कर्मचारियों को मालूम नहीं होना चाहिए। आप अनुमान कर ही सकते हैं।" चित्रसेन ने धीमे से कहा।



उस दिन रात को धवलगिरि के राजा तारकेश्वर के सम्मान में बड़ा सहभोज, बड़े मनोरञ्जन का कार्यक्रम आयोजित किया गया। उस जङ्गल में रहनेवाले जङ्गली जातियों के प्रतिनिधि सहभोज में उपस्थित हुये। उनमें से हरेक को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि उनका राजा, धवलगिरि के राजा का पुत्र था।

सहभोज और मनोरञ्जन के बाद चित्रसेन ने अपने पिता को एकान्त में सब बातें बता दी। परन्तु उसने यह न बताया कि कैसे शेर को देखकर घोड़ा भाग गया था और कैसे उसने भयङ्कर राक्षस उग्राक्ष को वचन दिया था।

"जो राक्षस को तुमने वचन दिया है, उसे कैसे निभा सकोगे? क्षत्रिय हो, तिस पर राजा हो। इस तरह राक्षस को अपनी पहली सन्तान देना किसी भी के लिए धर्मसङ्गत नहीं है। यह उचित नहीं है।" तारकेश्वर ने कहा।

अभी तो मेरा विवाह ही नहीं हुआ है। विवाह के बाद और लड़के के पैदा होने पर ही और उसके अट्ठारहवें वर्ष की आयु होने पर ही तो ये सम्भाबनाएँ उठेंगी। तब कुछ न कुछ करके इस आपत्ति से निकला जा सकता है।" चित्रसेन ने कहा।

तारकेश्वर को पुत्र की कोई बात नहीं जँची। उग्राक्ष का नाश करना भी सम्भव न था।

बहुत सोच-सोचकर तारकेश्वर ने कहा-"तेरा राज्य, धवलगिरि राज्य की सीमा पर ही है। अगर किसी परिस्थिति में मेरी सहायता की आवश्यकता हो तो खबर भेज देना।

(अभी है)



वह विवाह जो न हुआ



विक्रमार्क फिर एक बार पेड़ के पास गया। शव को उतार कर, कन्धे पर डाल, हमेशा की तरह चुपचाप श्मशान की ओर चल पड़ा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा-"राजा, मैं यह नहीं समझ पाता कि तुम यह सब क्यों कर रहे हो, क्योंकि तुम्हें तो कोई फल मिलेगा नहीं। मुझे तो लगता है कि तुम भी प्रमोदक की तरह ख्वाहमख्वाह अपने को सुख-सुविधाओं से वञ्चित कर रहे हो। ताकि तुम्हें थकान न हो, मैं तुम्हें उसकी कहानी सुनाता हैं, सुनो।"

गौतमी नदी के प्रान्त में ऊँचे पहाड़ों के बीच में एक गहरी घाटी हुआ करती थी। उस घाटी में कुछ ही घर थे। उसमें रहनेवालों का बाहरी दुनियाँ से कोई सम्बन्ध न था। बाहर सूर्योदय के तीन



घड़ी बाद, यहाँ सूर्य की किरणें पहुँचती। इस तरह सूर्यास्त भी दो तीन घड़ी पहले ही होता। इस घाटी में कितने ही नदी नाले थे, बाग-बगीचे थे। यह भूमि पर स्वर्ग सा मालूम होता था।

प्रमोदक इसी घाटी में पैदा हुआ और पाला पोसा गया। उसके पिता को किसी चीज की कमी न थी। वह अपने पिता का इकलौता था। तब उसकी उम्र कोई पाँच छ: वर्ष की थी कि वह पिता के साथ घाटी से एक पहाड़ी पर चढ़ा। जब वे चोटी पर पहुँचे, तो उनको नीचे मैदान ही मैदान दिखाई दिये। उन्हें देखने के बाद उसको अपनी घाटी छोटी-सी लगी।

"पिता जी, क्या दुनियाँ इतनी बड़ी है?" उसने आश्चर्यपूर्वक पूछा।

पिता ने हँसकर कहा-"बेटा, क्या तुम सोच रहे हो कि तुम्हें सारी दुनियाँ अभी से दिखाई दे गई है? दुनियाँ तो बहुत बड़ी है, उसमें कितने ही बड़े बड़े शहर हैं। बड़ी बड़ी नदियाँ हैं। बड़े बड़े समुद्र हैं।"

प्रमोदक ने पिता से उन नगरों के बारे में, वहाँ के जीवन के विषय में, समुद्रों के सम्बन्ध में और उनमें चलनेवाली नौकाओं के बाबत जाना। ज्यों ज्यों वह जानता गया, त्यों त्यों इच्छा प्रबल होती गई कि वह उन चीज़ों को देखे। वह हमेशा पिता के बताये हुये आश्चर्यों को देखने के सपने लेता रहता।

प्रमोदक सोलह वर्ष का हुआ। दुनियाँ की सैर करने की इच्छा उसमें पहले से कहीं अधिक थी। इसी समय उसकी घाटी में एक आदमी आया। उससे प्रमोदक ने परिचय कर लिया। उससे संसार के आश्चर्यों के बारे में और जानकारी ली। फिर उसने

जोश में कहा-"मैंने सारी जिन्दगी यहीं काट दी है। मैं इस विशाल विश्व को देखने के लिए उतावला हो रहा हूँ।"

"क्या तुम यह सोच रहे हो कि उन बड़े बड़े शहरों को देखकर, समुद्रों को पार कर, तुम अधिक सुखी होगे? महाराजाओं के महलों में भी यह सुख-शान्ति न मिलेगी। अगर तुम आनन्द ही चाहते हो, तो इस घाटी को छोड़कर कहीं न जाओ।" उस बड़े आदमी ने कहा।

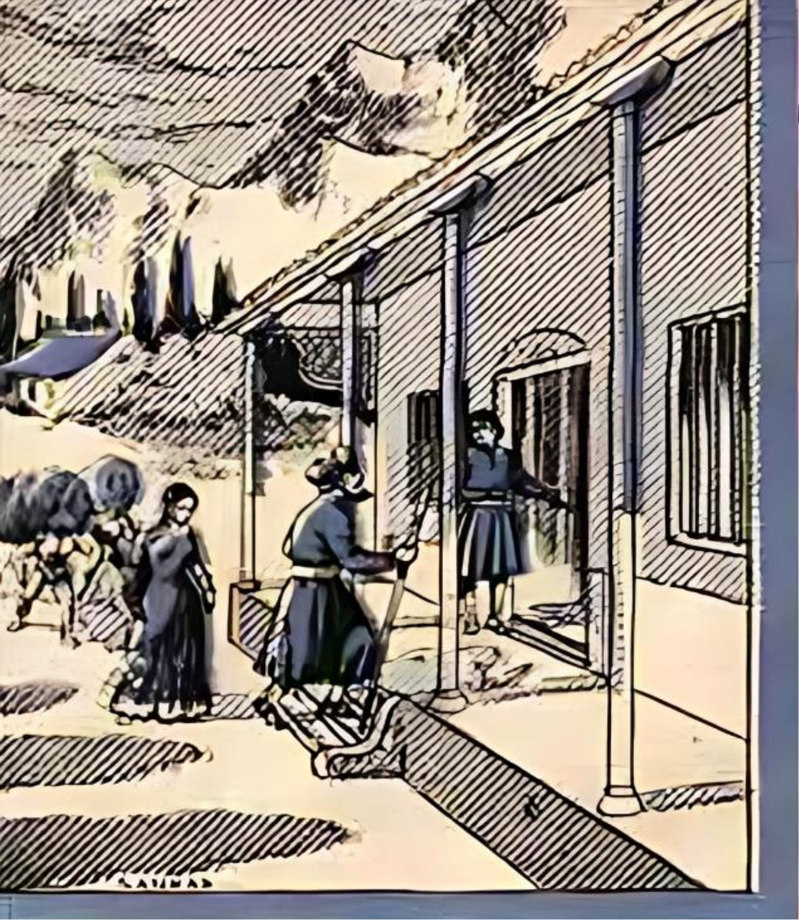
"जब इतनी बड़ी दुनियाँ है तो इस छोटी-सी घाटी में सारी जिन्दगी बिता देना भी कोई जिन्दगी है?" प्रमोदक ने पूछा।

"अरे पगले, सारी दुनियाँ में तो यूँ कभी न धूम पाओगे। इस दुनियाँ के बारे में ही क्यों सोचते हो? सृष्टि तो और भी बड़ी है। सिर उठाकर उन तारों को तो जरा देखो। हमारे संसार से कहीं बड़े संसार इस सृष्टि में हैं। उनमें क्या क्या आश्चर्यजनक वस्तुयें हैं, कोई नहीं जानता। यद्यपि वे हमें दिखाई देते हैं, पर हम वहाँ पहुँच नहीं पाते।" उस आदमी ने कहा। इन बातों के कारण प्रमोदक का इरादा बदल गया। माँ-बाप के मरने के बाद भी वह कहीं न गया



और अपनी सम्पति की ही देख-भाल करता रहा।

प्रमोदक को सब जानते थे, और सब किसी को प्रमोदक जानता था। क्योंकि वह हमेशा खोया-खोया सा रहता था जैसे किसी और दुनियाँ में हो, इसलिए वे उससे दूर ही दूर रहते। उसकी उम्र भी विवाह के लायक हो गई। विवाह करने के लिए उस घाटी में कई कन्यायें थीं। परन्तु उनमें से उसे एक भी न जँची। उसने विवाह के बारे में सोचना ही छोड़ दिया।



उस समय एक घटना घटी। घाटी के किनारे कुलशेखर रहा करता था। उसने नया मकान बनवाने के लिए अपना पुराना मकान तुड़वा दिया। उसने प्रमोदक से कहा कि वह उसके घर एक महीने तक रहना चाहेगा। क्योंकि प्रमोदक का घर बड़ा था, और उसमें वह और दो नौकर ही रहा करते थे, उसने कुलशेखर को अपने घर रहने के लिए कहा। कुलशेखर अपनी लड़की मन्दाकिनी के साथ प्रमोदक के घर आया।

प्रमोदक मन्दाकिनी को अच्छी तरह न जानता था। उसने यह सुन अवश्य रखा था कि वह बहुत सुन्दर थी, और उसने कई से विवाह करने से इनकार कर दिया था। जब वह उसके घर रहने आई तो वह उसके आकर्षण के बारे में जान सका। उसका सौन्दर्य ही नहीं, आचार, व्यवहार, आदि ने उसे प्रभावित किया। उसे यह जानकर खुशी हुई कि आखिर उसको एक ऐसी लड़की मिली, जिसके साथ वह विवाह कर सकता था।

परन्तु प्रमोदक ने किसी प्रकार का उतावलापन नहीं दिखाया। उसने सोचा कि हो सकता है कि समय के साथ उसका अभिप्राय भी उसके विषय में बदल जाये। जैसे जैसे दिन गुजरते गये वैसे वैसे मन्दाकिनी ने उसको और आकर्षित किया। उसको उसमें कोई भी कमी न दिखाई दी।

उसने एक दिन कुलशेखर से कहा- "अगर आपको और आपकी लड़की को कोई आपत्ति न हो तो मैं आपकी लड़की से विवाह करना चाहूँगा।" जब कुलशेखर ने यह बात अपनी लड़को से कही तो उसने कहा कि उसे कोई आपति न थी। सिवाय मुहूर्त निश्चित करने के बाकी सब कुछ मन्दाकिनी और प्रमोदक के विवाह के विषय में तय कर लिया गया।

इसके कुछ दिन बाद एक दिन शाम को वे पहाड़ी रास्ते से कुछ बातें करते जा रहे थे कि उनको एक जगह अच्छी सुगन्धवाले फूल दिखाई दिये। मन्दाकिनी ने जाकर उन्हें तोड़ लिया। कुछ को अपनी वेणी में गूँथ लिया और कुछ को हाथ में पकड़कर प्रमोदक के पास आई।

"फूल यदि पेड़ पर ही हो तो और आनन्ददायक होते हैं न?" प्रमोदक ने पूछा।

"मेरे लिए नहीं। मैं अगर पेड़ पर फूल देखती हूँ तो में उनके लिए ललचाने लगती हूँ। चिना उनको लिए चैन नहीं मिलती।" मन्दाकिनी ने कहा।

अगले दिन सवेरे मन्दाकिनी के दिखाई देने पर प्रमोदक ने कहा-"मैंने रात में सोचा कि तुमसे एक बात कहूँ। हम दोनों बड़े स्नेह से रह रहे हैं। हम दोनों आनन्द भी पा रहे हैं। परन्तु मैं यह नहीं सोचता कि विवाह करने मात्र से हमारा आनन्द किसी तरह अधिक होगा। तुम्हारा क्या ख़याल है?"

मन्दाकिनी ने सोचा कि उसका इरादा बदल रहा था। "मैं कब कह



रही हूँ कि आप अपनी मर्जी के बिना मुझ से विवाह करें? विवाह का प्रस्ताव आप ही ने तो किया था! जो हुआ सो हुआ, अब इस विषय में कुछ न कहिये।"

प्रमोदक ताड़ गया कि उसको उस पर गुस्सा आ गया था। पर वह न जान सका कि उसके गुस्से को कैसे दूर करे। मन्दाकिनी ने अपने पिता से कहा-"पिताजी! मैंने बहुत सोच विचार के बाद निश्चय किया है कि मैं प्रमोदक से विवाह न करूँगी। आप हमारे विवाह की बात फिर न करना।"

कुछ दिनों बाद कुलशेखर का नया मकान बन गया। बाप बेटी चले गये। मन्दाकिनी का फिर किसी से विवाह हुआ। प्रमोदक जीवन भर ब्रह्मचारी ही रहा। वह और किसी से प्रेम न कर सका।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा-"प्रमोदक ने क्यों इतनी बेअक्ली की? जिस स्त्री से उसने प्रेम किया था, जो उससे विवाह करने के लिए मान गई थी, उसको क्यों छोड़ दिया? अगर तुमने इस प्रश्न का जान बूझकर उत्तर न दिया तो तुम्हारा सिर फूट जायेगा।"

तब विक्रमार्क ने कहा-"यह तो कोई पेचीदा सवाल नहीं है। प्रमोदक आनन्द चाहता था, पर अनुभव नहीं। बिना अनुभव के आनन्द पाया जा सकता है। यह सोलह वर्ष की उम्र में ही वह जान गया था, इसलिए ही उसने दुनियाँ की सैर का इरादा छोड़ दिया था। जब मन्दाकिनी ने फूल तोड़े तो वह जान गया कि अनुभव के कारण आनन्द ख़तम हो जाता है। मन्दाकिनी से उसे जो आनन्द मिल रहा था और उससे मन्दाकिनी को जो आनन्द मिला रहा था उसने सोचा कि विवाह करने से खतम हो जायेगा। यानी मन्दाकिनी अनुभव चाहती थी, आनन्द नहीं। इसलिए पेड़ पर फूल देख आनन्दित न हुई। पर उनको उसने तोड़कर रख लिया। इस प्रकार की स्त्री उस व्यक्ति से जिसको उसने प्रेम किया हो, कभी तृप्त न होगी। यही कारण था कि मन्दाकिनी और प्रमोदक का विवाह न हुआ।"

राजा का मौन इस प्रकार भङ्ग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और पेड़ पर जा बैठा।

(कल्पित)





अयोध्या नगर में महाराजा दशरथ ने श्री रामचन्द्र के पट्टाभिषेक के लिए आज्ञा दे दी थी। तैयारियाँ शुरू हो गई थीं। छत्र, चामर, सिंहासन आदि बनाये गये। सुवर्ण कलशों में पानी भरा गया। दुब घास इकट्ठी गई। संस्कार के लिए पुरोहित वसिष्ठ उद्यत थे। इस शुभ अवसर पर यथोचित नाटक का प्रदर्शन करने के लिए कलाकारों को कहा गया था।

उस समय सीता की एक दासी जिसका नाम अवदातिक था, कहीं से वल्कल चुराकर लाई। कलाकारों को वेष भूषा देनेवाली रेवादेवी से उसने अशोक पेड़ की छोटी-सी टहनी माँगी और जब उसने देने से इनकार कर दिया, तो उसने गुस्से में यह काम किया। चोरी मजाक में ही की थी, पर अवदातिक इस प्रकार काँप रही थी, जैसे सचमुच चोरी की हो।

उसका घबराना देख सीता ताड़ गई कि उसने क्या किया था। उससे कहा-"जाओ, उसे तुरन्त यह दे आओ।" परन्तु उन्हें तुरन्त सूझी अगर वह उस बस्त्र को धारण करे तो कैसे रहेगा! उन्होंने उस बख को पहना। अवदातिक ने सीता के लिए शीशा लाते हुए कहा-"पट्टाभिषेक की बात कान में पड़ रही है। कोई राजा होगा।" इतने में एक और दासी ने आकर बताया कि श्री राम का पट्टाभिषेक था। "क्या महाराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं है?" सीता ने चिन्ता प्रकट की। यह जान कि महाराज स्वयं पट्टाभिषेक करवा रहे थे, सीता ने कहा-"तो ठीक है।" पर इतने में मङ्गलबाद्य बजे और बन्द

हो गये। दूसरी दासी को आश्चर्य हुआ, क्यों ऐसा हुआ था। "कहीं पट्टाभिषेक स्थगित तो नहीं हो गया है। राजमहलों में कितनी ऐसी बातें हैं, जो सोची तो जाती हैं, पर की नहीं जातीं।" सीता ने कहा। दासी ने आकर बताया कि "राम के पट्टाभिषेक के बाद, सुनते हैं, महाराज बनवास करेंगे।"

"तो क्या अभिषेक जल आँसू धोने के लिए ही हैं?" सीता ने पूछा।

राम आये। "मङ्गलवाद्य बजे। उपस्थित सज्जन प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं आसन पर बैठा हुआ था। मेरे सिर पर पवित्र उदक डालने ही वाले थे। परन्तु तब पिता जी ने बुलाकर कहा-'बेटा, ठहरो!' और मुझे भेज दिया। मुझे खुशी हुई कि मैं राज्य के बोझ से बच गया।" राम ने कहा। उन्होंने सीता को यह भी बताया कि मन्थरा ने आकर राजा के कान में कुछ कहा था। फिर सीता को बल्कल वस्त्र धारण किया हुआ देखकर उन्होंने हठ किया कि मुझे भी वैसा ही वस्त्र चाहिये। एक और वल्कल वस्त्र लाने के लिए सीता ने रेवादेवी के पास भेजा।



इतने में "हाय महाराज" आर्तनाद सुनाई दिया। दौवारिक ने आकर बताया कि कैकेई के कारण पट्टाभिषेक रोक दिया गया था। उन्होंने भरत के पट्टाभिषेक के लिए जिद पकड़ी। और यह सुन महाराज मूर्छित हो गये।

फिर लक्ष्मण, धनुष बाण लेकर आया। उसने गुस्से में कहा-"मैं अभी उस कैकेई को मार दूँगा।"

"राज्य के लोभ में हत्या करोगे? किसको मारोगे? पिता को माता को? या विचारे भरत को, जो कुछ भी नहीं जानता है!" राम ने पूछा।



लक्ष्मण के आँखों में तरी आ गई। "मुझे इसलिए गुस्सा नहीं आ रहा है, कि तुम्हें राज्य नहीं मिल रहा है। पर इसलिए कि वह कैकेई तुम्हें चौदह वर्ष वनवास के लिए भेज रही है।"

"इसलिए ही महाराज मूर्छित हो गये होंगे।" राम ने कहा। उन्होंने सीता से बल्कल वस्त्र देने के लिए कहा। सीता ने कहा कि वह भी उनके साथ वनवास के लिए जाएगी। राम के बहुत कहने पर भी जब सीता न मानीं तो उन्होंने लक्ष्मण से कहा- "तो तुम ही समझाकर देखो।"

लक्ष्मण ने कहा-"उन्होंने गलत तो कुछ भी नहीं कहा है।"

रेवादेवी के पास से सीता की दासी एक और वल्कल बख ले आई। राम को उसे पहना देख लक्ष्मण ने कहा-"भाई, जो कुछ तुम्हारे पास होता है, उसमें मुझे आधा देते हो। पर यह वल्कल वस्त्र तो पूरा का पूरा तुमने ही ले लिया है। मुझे भी आधा दो।

राम ने सीता से कहा-"लक्ष्मण को समझा कर देखो।" सीता ने बहुत समझाया, पर लक्ष्मण अड़ा रहा। उसने कहा कि वह भी उनके साथ बनवास के लिए आएगा। उसने भी बल्कल बस्त्र धारण किया। जब तीनों राजमार्ग से जा रहे थे तो नगरवासी जमा हो गये। इतने में दौवारिक ने आकर बताया-"यह जान कि आप वनवास जा रहे हैं, महाराज आ रहे हैं। जरा ठहरिये।"

"वनवास जानेवालों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे किसी से विदा लें।" लक्ष्मण ने राम से कहा। यह ठीक जान राम बिना रुके सीता और लक्ष्मण के साथ आगे बढ़ते गये।

सीता, राम, लक्ष्मण के चले जाने के बाद दशरथ को बहुत दुख हुआ। कौशल्या और सावित्री ने उनकी बहुत सेवा शश्रुषा की। सुमन्त ने दशरथ को बताया कि राम आदि वन में चले गये थे। यह सुन दशरथ ने सुमन्त्र से कहा-"भरत को तुरन्त बुलाओ।" फिर उनकी मृत्यु समीप आ गई। "राम, सीता, लक्ष्मण, मैं जा रहा हूँ।" कहते हुए उन्होंने प्राण छोड़ दिये।

*   *   *

अयोध्या से कुछ दूरी पर प्रतिमाशाला थी। उसमें मृत राजाओं की प्रतिमायें रखी जाती थीं। दशरथ की मृत्यु के बाद उनकी प्रतिमा भी उसमें रखी गई। महारानियाँ आ रही थीं, अतः उसको सजा दिया गया था।

उसी दिन भरत मामा के घर से अयोध्या आ रहा था। नगर से बाहर ही शत्रुघ्न के भेजे हुए आदमी ने उसके रथ के सामने आकर कहा कि अयोध्या के वयोवृद्धों ने कहा है कि जब तक कृतिका नक्षत्र न चला जाये और रोहिणी न आ जाये, वे अयोध्या में न प्रवेश करें।



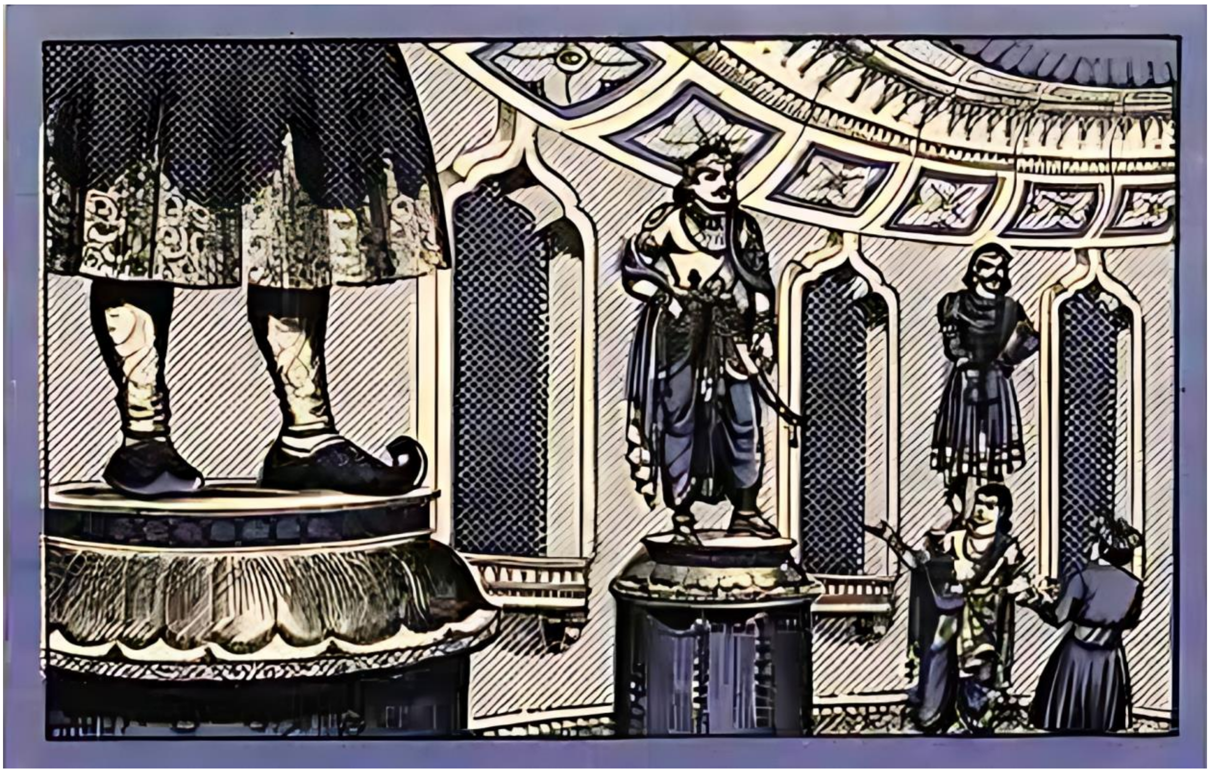
भरत ने जब अपने रथ को रोककर चारों तरफ देखा तो पेड़ों के झुरमुट में उसे प्रतिमाशाला दिखाई दी। वह उस प्रतिमाशाला के बारे में न जानता था। न यह ही जानता था कि उसके पिता गुज़र चुके थे। उसने सोचा कि वह कोई मन्दिर होगा। वह उस तरफ गया।

प्रतिमाशाला में कोई न था। केवल चार मूर्तियाँ ही अलंकृत थीं। यह सोच कि वे किसी देवताओं की मूर्तियाँ होगी, उसने उनको नमस्कार किया। इतने में प्रतिमाशाला से सम्बन्धित व्यक्ति ने आकर बताया कि वे देवताओं की मूर्तियाँ न थीं, मृत महाराजाओं की प्रतिमायें

थीं। उसने भरत को दिलीप महाराज, रघु महाराज, दशरथ के पिता अज महाराज को दिखाकर उनकी प्रसिद्धि के विषय में बताया। उनकी बगल में चौथी मूर्ति को देख भरत कुछ घबराया। वह उसके बारे में प्रश्न न कर पाया। इसलिए पहली तीन मूर्तियों के बारे में बार बार पूछा। इस तरह उन तीनों के बारे में मालूम कर लेने के बाद भरत ने पूछा-"क्या यहाँ जीवित महाराजाओं की मूर्तियाँ भी रखी जाती हैं?" उस व्यक्ति ने कहा-"मृत महाराजाओं की मूर्तियाँ ही वहाँ रखी जाती हैं।"

"जरा ठहरो। आप उन दशरथ के बारे में जाने बगैर जा रहे हैं, जिन्होंने पत्नी को अपने प्राण भेंट कर दिये।"

"हाय पिता!" यह सुनते ही भरत मूर्छित होकर गिर गया। तब वह आदमी जान सका कि वह लड़का भरत ही था। भरत ने होश में आकर उस आदमी से सब कुछ जाना। जब उसे मालूम हुआ कि सीता राम, लक्ष्मण वन चले गये थे, तो भरत फिर मूर्छित हो गया। उस समय महारानी कौशल्या, सुमित्रा, कैकेई आदि वहाँ आई। सुमन्त उनके साथ था।



भरत को होश आया। उसने कौशल्या और सुमित्रा को नमस्कार किया। परन्तु अपनी माँ कैकेई की निन्दा की।

"बेटा, मैंने क्या किया है?" कैकेई ने पूछा। भरत ने उस पर वे सब आरोप लगाये, जो लगाये जा सकते थे। पर कैकेई ने कुछ भी ऐसा न दिखाया, जो यह सिद्ध करे कि वह अपने को अपराधी समझ रही हो।

"बेटा, तुम्हारा पट्टाभिषेक करने के लिए बसिष्ठ आदि आ रहे हैं।" सुमन्त्र का कहना था कि भरत गुस्से में गुर्राया-"अभिषेक इस महारानी का करो। मैं अयोध्या नहीं आऊँगा। जहाँ राम हैं, वही मेरे लिए अयोध्या है।"

इसके कुछ देर बाद भरत सुमन्त्र को साथ लेकर चित्रकूट गया। राम की पर्णशाला वहीं थी। भरत ने सुमन्त्र से कहा-"राम से कहो कि लालची कैकेई का लड़का भरत आया है।"

"बड़ों की निन्दा करना अनुचित है।" सुमन्त्र ने कहा। भरत अपने आपको प्रकट करने के उद्देश्य से चिल्लाया-" क्रूर, कृतघ्न, असभ्य, धूर्त होता हुआ भी





भक्ति-श्रद्धावाला एक आया है। क्या वह अन्दर आ सकता है?"

पर्णशाला में बैठे राम ने यह आवाज सुनकर कहा-"पिता जी की आवाज-सी लगती है। कोई मित्र शायद आया है।" उन्होंने लक्ष्मण को जाकर देखने के लिए कहा। लक्ष्मण बाहर आया। भरत को बाहर देखकर उसने राम से कहा।

भरत को अन्दर लिवा लाने के लिए राम ने सीता को भेजा। भरत ने आकर राम का आलिङ्गन किया। भरत ने भी राम के साथ वन में रह जाना चाहा। परन्तु राम न माना। क्या तुम सोच रहे हो कि अहङ्कार के कारण अथवा भय के कारण या पागलपन के कारण यहाँ आया हूँ? पिता की आज्ञा पर आया हूँ। इसलिए तुम भी उनकी आज्ञा के अनुसार राज्य करो।"

भरत इसके लिए बिल्कुल न माना। आखिर वह राम की इच्छा की उपेक्षा भी न कर सका। "अगर तुम मानों कि तुम वनवास के बाद अपना राज्य ले लोगे तो मैं राज्य का परिपालन के लिए तैयार हूँ। राज्याभिषेक मेरा न होगा, परन्तु तुम्हारी पादुकाओं का होगा।"

राम इसके लिए मान गया। उन्होंने अपनी पादुकाएँ भरत के हाथ अयोध्या भिजवा दीं।

* * *

एक दिन सीता, राम, पर्णशाल में बैठे दशरथ की बरसी के बारे में, जो अगले दिन पड़ती थी, सोच रहे थे। रावण ने तपस्वी वेश में आकर कहा-"कौन है अन्दर? मैं अभ्यागत हूँ। क्योंकि उसके भाई खर को राम ने मार दिया था, इसलिए राम से बदला लेने के लिए वह

इस रूप में सीता को ले जाने के लिए आया था।"

राम ने उसको पर्णशाला के अन्दर बुलाया। उसको बिठाकर पूछा- "महर्षि, श्राद्ध के लिए क्या क्या आवश्यक है?" इस पर रावण ने कहा-"घास में दूब, बीजों में तिल, दालों में उड़द, जन्तुओं में गौ, या बारहसिङ्गा या सोने का हरिण मुख्य हैं। परन्तु सोने के हरिण यहाँ नहीं मिलते। वे हिमालय में गङ्गा जल पीते रहते हैं।"

इतने में राम को दूरी पर एक सोने का हरिण दिखाई दिया। उसको पकड़ने के लिए राम ने लक्ष्मण को भेजना चाहा, पर उस समय वह कुछ मुनियों को देखने गया हुआ था। इसलिए राम उसको पकड़ने के लिए निकला। रावण के देखते देखते हरिण, राम के बाणों से बचकर झाड़ियों में अदृश्य हो गया।

तब रावण अपने असली रूप में सीता के सामने आया और उनको उठाकर ले गया। सीता जोर से चिल्लाई। मुनियों को बुलाया।

सीता की आवाज सुनकर जटायु नाम का पक्षी रावण से भिड़ गया।



रावण ने जटायु के पंख काट दिये, और अपने रास्ते चला गया।

* * *

और उधर अयोध्या में भरत ने सीतापहरण, राम लक्ष्मण के सुग्रीव की मैत्री करके बाली के मारने के आदि के बारे में मालूम कर किया था। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि रावण सीता को उठा ले गया था, तो उसे लगा, जैसे उस पर किसी ने कुल्हाड़ी मार दी हो। गुस्से में उसने जाकर अपनी माँ कैकेयी से कहा-"तुम्हारे लिए एक खुश खबरी लाया हूँ।

तेरे कारण राम को वनवास तो मिला ही, अब सीता का अपहरण भी हो गया है। क्या अब सन्तुष्ट हो? तुम्हारे बहू बनकर आने के कारण हमारा वंश एक और वहू को खो बैठा है।"

कैकेयी बहुत देर तक भरत की बातें न सह सकी। उसने बताया कि-"दशरथ पर पुत्र शोक का शाप था। उस शाप के प्रभाव के कारण मैंने राम के वनवास के बारे में कहा।"

"क्यों नहीं मेरा बनवास माँगा?" भरत ने पूछा।

"तुम तो शुरू से ही दूर दूर रहे हो।" कैकेयी ने कहा।

"तो चौदह वर्ष के लिए क्यों बनवास माँगा?" भरत ने पूछा।

"मैंने कहना तो चौदह रोज चाहा था, पर मुख से निकल पड़ा चौदह साल। यही बात है बेटा।" कैकेयी ने कहा।

भरत को ये सब बातें ओरों से भी मालूम हुई। "माँ, तेरे कारण कोई मस्ती नहीं हुई है। मुझे क्षमा करो कि मैंने कठोर शब्द उपयोग किये।"

*   *   *

आश्रमवासियों को पता लगा कि राम, रावण को मारकर, सीता को कैसे कर लंका के नये राजा विभीषण के साथ आ रहे थे। उन्होंने स्वागत की तैयारी की। मुनि, मन्त्रियों ने सीता का आदर-सत्कार किया। भरत और महारानियाँ सेना के साथ वहाँ पहुँच गई। राम के कष्ट दूर हुये। सब सन्तोष से फिर एक जगह एकत्रित हुये। वहीं, मुनियों ने राम का राज्याभिषेक किया। फिर सब को अयोध्या ले जाने के लिए पुष्पक वायुयान आया।





शरारती

किसी जमाने में जर्मनी में टिल नाम का एक शरारती हुआ करता था। हमेशा झूठ बोलना, किसी न किसी को सताना, आदि उसने बचपन से ही करना शुरू कर दिया था।

सिवाय शरारत करने के उसने कोई काम धन्धा न सीखा। पिता ने उसे खेतीबाड़ी सिखाना चाहा। माता ने उससे कुछ पर के काम काज करवाने चाहे। पर वह अवारागिर्दी ही किया करता।

टिल अभी सोलह वर्ष का था कि उसका पिता गुजर गया। टिल की माता को पति की मृत्यु का तो शोक था ही। अब गरीबी ने भी घर में धरना दे दिया था। "हमारी क्या हालत होगी? अगर तू आवारागर्दी न करके कुछ सीख साख लेता तो यह बेहाली न होती।" माता रोई धोई।

पर टिल के कान पर जूँ तक न रेंगी। ऐसी भी हालत आई कि घर में न एक कौड़ी रह गई थी, न कौर भर रोटी ही।

"अगर हमने जैसे तैसे रोटी न पाई तो हम दोनों को फाके करने होंगे। पापी हूँ, यह दुर्दशा देखने के लिए ही जीवित हूँ।" माँ मुँह छुपाकर जोर से रोई।

"माँ, क्यों रो रही हो? तुम रोटी ही तो चाहती हो? देखो, लाकर देता हूँ।" टिल यह कह बाहर गया।

रोटी की एक अच्छी दुकान में घुसकर उसने दुकानदार से कहा- "अरे भाई, हमारे जमीन्दार साहब इस शहर की एक सराय में ठहरे हुए हैं। अगले पड़ाव तक पहुँचने के लिए नौकर-चाकरों के लिए रोटी लाने मुझे भेजा है। एक

भगवानदत्त



सोने की सिक्के की जितनी रोटियाँ आयें, उतनी देकर क्या मेरे साथ एक आदमी भेजोगे? सराय में पैसे दिलवाऊँगा।" रोटीवाले ने झुक झुककर टिल को सलाम किया। फिर एक टोकरे में रोटियाँ रखवाकर उसने अपने नौकर को टिक के साथ भेजा।

जब दोनों सराय की ओर जा रहे थे, टिल ने नौकर से कहा-"टोकरा ठीक नहीं पकड़ रखा है। रोटियाँ नीचे गिर जायेंगी। सम्मलकर।" नौकर ने टोकरा ठीक करने के लिए उसे एक तरफ मोड़ा तो, एक रोटी नीचे गिर गई।

"देखा, मैं कह ही रहा था। अगर यह नीची गिरी रोटी हमारे जमीन्दार की नजर में पड़ी तो हम दोनों को धुन देंगे। तुम इसे ले जाकर अच्छी रोटी ले जाओ । मैं यहीं रहूँगा।" टिल ने कहा। दुकानदार के नौकर ने सोचा कि उसकी गलती थी। वह रोटी लेकर झट दुकान की ओर भागा। उसके आँखों से ओझल होते ही टिल टोकरा लेकर पर चला आया।

"माँ, देखो रोटियाँ मक्खन की तरह सफेद हैं। हम दो सप्ताह तक इन्हें खा सकते हैं। कुछ बेच भी सकते हैं।" उसने अपनी माँ से कहा।

परन्तु वे रोटियाँ तो हमेशा के लिए काफी न थी। फिर ऐसी हालत पैदा हो गई कि फाके करने की नौबत मा पड़ी। माँ रोने लगी-"तुम भी कैसे नलायक निकले।"

"माँ तुम रोओ मत। मैं राजधानी में जाकर कोई काम करूँगा।" टिल ने कहा। राजधानी में उसने एक रोटी बनानेवाले के यहाँ दो दिन नौकरी की। तीसरे दिन दुकानदार ने उससे कहा-

"मुझे कहीं बाहर जाना है। इसलिए तुम ही रोटी बनाओ।"

"अच्छा, बनाऊँगा। मगर क्या बनाऊँ?" टिल ने पूछा।

"क्या कह रहे हो? क्या उल्लू और बन्दर बनाओगे? तुम नहीं जानते कि क्या बनाना है? फालतू बकवास न करो।" मालिक यो खौल खौलाकर चला गया।

टिक रसोई में गया। उसने आटे को उल्लू और बन्दर की शक्ल में बनाया और उनको सेंक दिया। जब अगले दिन मालिक वापस लौटा तो उसने उल्लू और बन्दर के आकार में रोटियाँ बनी देखी। "गधा कहीं का। यह क्या किया?" मालिक ने पूछा।

टिल ने लम्बा-सा मुँह करके कहा- "आप ही ने उल्लू और बन्दर बनाने के लिए कहा था न?"

मालिक ने टिल को दो चपत लगाये। "तुम अपनी शक्ल मुझे न दिखाओ और आटे के दाम देते जाओ।"

"इन रोटियों को मुझे दे दो, तब मैं आटे के दाम दूँगा।" टिल ने कहा। मालिक को उसे दो दिन की मजदूरी देनी थी। उसकी जेब में



कुछ फूटे पैसे थे। उन्हें मालिक को देकर वह अपनी बनाई हुई रोटी के खिलौनों को लेकर बड़े गिरजा घर के पास गया।

उस दिन कोई पर्व था। टिल गिरजापर के पास खड़ा हो, आते जाते लोगों से पूछने लगा-"उल्लू चाहिए, बन्दर चाहिए?" अजीब रोटियों को बेचता देख सब जोर से हँसे। कई ने उन्हें खरीदा भी। जल्दी ही सब रोटियाँ खतम हो गई। टिल के पास कुछ पैसे भी जमा हो गये। वह पैसे लेकर घर गया।

भले ही टिल कोई कामधन्धा न जानता हो, पर वह ऐसे बहुत-से काम जानता था, जिनसे लोगों को धोखा दिया जा सकता था। धोखा दे देकर उसने कुछ पैसा कमाया और एक घोड़ा खरीदा। घोड़े पर सवार हो वह जर्मनी में घूमने फिरने लगा और लोगों को सताने लगा।

एक दिन एक शहर में वह एक हाट में गया। वहाँ बहुत-सी स्त्रियाँ दूध बेचने के लिए आई हुई थीं। टिल ने एक बहुत बड़ा पात्र लाकर एक जगह रखा। दूध बेचनेवालों से यह कहने लगा-"मुझे इसमें दूध चाहिए और जो देंगे उससे कुछ अधिक ही दूँगा।" एक एक दूधवाली आई और दूध बड़े पात्र में उड़ेलकर पैसे माँगने लगी।

"जब तक यह पात्र भर नहीं जाता तब तक मैं किसी को पैसे नहीं दूँगा।" आखिर पात्र भर गया। टिल ने दूधवालों से कहा-"आज यह मेरे लिए काफ़ी है। आप लोगों का पैसा दो सप्ताह बाद हिसाब करके दूँगा। अगर कोई तब तक इन्तजार नहीं कर सकती है, तो वह अपना दिया हुआ दूध ले जा सकती है।"



तुरन्त उन्होंने पात्र में से अपना अपना दूध लेना चाहा। वे लड़ीं, झगड़ीं और कुछ दूध मिट्टी में मिल गया। और इस समय में टिल कहीं खिसक गया।

एक बार ऐसा हुआ कि टिल का अपना सारा पैसा ख़तम हो गया। घोड़ा भी बेचने की नौबत आई। लेकिन वह घोड़ा बेचना न चाहता था। इसलिए घोड़ा बेचे बगैर ही उसने धन कमाने का एक उपाय सोचा।

वह एक सराय में गया। वहाँ के अस्तबल में अपना घोड़ा बाँधकर न्यायस्थल पर गया। यहाँ जमा हुने लोगों से कहने लगा-"मेरे पास एक विचित्र घोड़ा है। उस तरह का घोड़ा दुनियाँ में कहीं नहीं है। उसके जहाँ पूँछ होनी चाहिये थी, वहाँ सिर है और जहाँ सिर होना चाहिये वहाँ पूँछ है। अगर आप ताम्बे का सिका देंगे, तो उस घोड़े को दिखाऊँगा।"

लोग यह आश्चर्य देखने के लिए टिल के चारों ओर जमा हो गये और उसकी टोपी में सिक्के डालने लगे। उसकी





टोपी भर गई। फिर वह उन लोगों को सराय में ले गया। वहाँ अस्तबल में अपने घोड़े को दिखाया। उन्होंने वहाँ बस इतना आश्चर्य देखा कि रस्सी घोड़े के गले में न होकर पूँछ पर बँधी थी। जिन्होंने पैसा दिया था, उनमें से कई को गुस्सा आ गया। परन्तु जब कई टिल को सूझ-बूझ पर हँसने लगे, तो वे भी हसे बगैर न रह सके। इसलिए टिल की उन्होंने मरम्मत न की और वह सही सलामत भाग निकला।

एक दिन, टिल अपने घोड़े पर सवार हो एक नगर से बाहर जा रहा था, तो उसे बारह अन्धे भिकारी दिखाई दिये। उसने उनसे कहा-"न मालूम तुम कितने दिनों से यों बाहर खड़े खड़े मीख माँग रहे हो। क्यों नहीं किसी सराय में आराम से रहते?" "हम और इतना भाग्य? कौन ऐसा दाता है जो हमें सराय में रखकर हमें खाने-पीने को दे?" अन्धे भिखारियों ने कहा।

"दान के सिवाय भी क्या कोई अच्छा पुण्य है? देखो, मैं तुम्हें दान देता हूँ। लो, तुम बारहों के लिये बारह सोने के सिक्के। इन्हें ले जाकर तुम किसी सराय में जितने दिन चाहो, उतने दिन रहो।" यह कहकर उसने सिक्के खनखनाये।

टिल ने उन सिक्कों को किसी एक भिखारी के हाथ में न रखा। क्योंकि वे अन्धे थे, इसलिए उन्होंने समझा कि उनमें से किसी एक को बारह सिक्के मिले होंगे।

फिर वे शहर गये। लोगों से पूछते पाछते वे एक अच्छे होटल में गये। होटलवाले ने उन्हें देखकर कहा-"अरे

यह भिखारियों के रहने की जगह नहीं है। जाओ, जाओ!" परन्तु भिखारियों ने कहा-" मगर हम भीख माँगने नहीं आये हैं। हमारे पास बारह सोने के सिक्के हैं। जो कुछ हमारे खान पान पर खर्च होगा, वह हम दे देंगे।" जब होटलवाले को मालूम हुआ कि उनके पास सोने के सिक्के थे, वह उनको बड़े आदरपूर्वक कमरों में ले गया और उनके लिए सब सुविधायें कर दीं।

एक सप्ताह तक भिखारियों ने खूब खाया पिया। गद्देदार बिस्तरों पर वे सोये। उनकी खूब खातिरदारी हुई। फिर होटल के मालिक ने उनसे आकर कहा-"अरे भाई, जब तुम अपने पैसे देकर चले जाओ। एक एक के हिसाब में एक सोने का सिक्का पड़ता है।"

भिखारियों ने निश्वास छोड़कर कहा-"उस दाता की कृपा से हम सप्ताह भर खूब आराम से रहे। और आज से हमारा और सुख का सम्बन्ध समाप्त हो गया है।" परन्तु उनमें से किसी ने भी होटल के मालिक को कुछ न दिया।

"पैसा दो, पैसा। कितनी देर यूँ देखते रहोगे?" होटल के मालिक ने डॉटा।



"जिसके पास सिक्के हो वह दे दे।" कुछ भिखारियों ने कहा। फिर उन सब ने कहा कि उनमें से किसी के पास न थे।

यह जान कि उसे धोखा दिया गया था, होटल के मालिक ने भिखारियों को फटकारा। "यह सचमुच हमारी गलती नहीं हैं, किसी ने हमें धोखा दिया है।" भिखारियों ने कहा।

"यह सब मैं नहीं जानता, तुम मुझे पैसे देते हो, या जेल चलते हो?" होटल के मालिक ने कहा। उसने उन सब को बाहर धकेल दिया और उनको ऐसी कोठरी

में बन्द कर दिया, जहाँ पशु बाँधे जाते थे, ताला भी लगा दिया।

उस समय टिल वहाँ आया। वह उन भिखारियों को एक नजर से देखता आ रहा था। उसने होटल के मालिक से कहा-"क्यों उन मनुष्यों को तुमने पशुओं की कोठरी में डाल दिया है? अतिथियों को क्या इसी तरह देखा जाता है? क्या यही आथित्य है?"

"चोर कहीं के। मुझे इन लोगों ने धोखा दिया है।" होटल के मालिक ने उनकी सारी कहानी सुनाई।

"अगर उनका पैसा कोई और दे दे तो क्या इन अन्धे भिखारियों को छोड़ दोगे?" टिल ने पूछा।

"मुझे तो पैसे चाहिये। मैं इन भिखारियों का क्या करूँगा?" होटल के मालिक ने कहा।

"क्या यहाँ दानी हैं ही नहीं?" कहकर टिल ने एक मठाधीश के पास जाकर कहा-"जी, एक आदमी पर शैतान सवार हो गया है। उसे भगा कर कुछ पुण्य कमाइये।"

"अच्छा, तो उनको मेरे पास ले आओ।" मठाधीश ने कहा।



टिल ने होटल के मालिक के पास आकर कहा-"सौभाग्य से एक मठाधीश मिला। जो कुछ भिखारियों को देना है, वे देंगे। अगर तुम्हें विश्वास न हो, तो तुम अपनी पत्नी को उनके पास भेजकर पूछ लो।"

होटल के मालिक की पत्नी टिल के साथ मठाधीश के पास गई। टिल ने उससे कहा-"जिस आदमी के बारे में मैंने कहा था, उनकी ये पत्नी हैं। इनकी इच्छा पूरी करेंगे न?"

"तुम अपने पति से कहो कि कोई फिक्र न करें। उन जैसों की सहायता करने के अतिरिक्त दान है ही क्या?" मठाचीश ने होटल के मालिक की पत्नी से कहा।

यह सुनकर खुशी खुशी जाकर उसने अपने पति से कहा-"उस मठाधीश ने कहा है कि वे दान देंगे।" उसके पति ने भिखारियों को छोड़ दिया। फिर उसने मठाधीश के पास जाकर अपने बारह सोने के सिक्के वसूल करने चाहे। जब दोनों में कुछ झगड़ा हुआ तो वे जान गये कि टिल ने उनकी आँखों में धूल झोंकी थी। पर तब तक टिल और भिखारी कहीं के कहीं





चले गये थे। होटल का मालिक कुछ भी न कर सका।

*   *   *

आखिर टिल की शरारतें कितने दिन चलतीं! एक बार उसे सरकारी कर्मचारियों ने पकड़ लिया। उसकी सुनवाई हुई और मौत की सजा दे दी गई। जब फाँसी का समय आया तो फाँसी के स्थल पर लोग जमा हो गये। बहुत-से यह न चाहते थे कि टिल उस तरह मारा जाये। उनमें से कई का यह भी ख़याल था कि वह जैसे जैसे भाग निकलेगा।

टिल को लाकर फाँसी के खम्भे के पास खड़ा किया गया। फन्दा बनाकर नई रस्सी को उसके गले में डाला गया। टिल से फाँसी लगानेवाले ने पूछा-"क्या कुछ कहना है?"

टिल ने वहाँ एकत्रित जनता को सम्बोधित करते हुए कहा-"मैं थोड़ी देर में मरने जा रहा हूँ। यह सजा मेरे लिए ठीक ही है, क्योंकि मैने कई जुर्म किये हैं। परन्तु सज्जनो, मेरी एक ही एक इच्छा है। मैं प्राण नहीं चाहता, धन-दौलत नहीं चाहता। मैं आप लोगों का खर्च कुछ कम ही करना चाहता हूँ।"

नगर के अधिकारियों ने आपस में सलाह मशवरा किया। अगर हमारा खर्च कम कर सके तो क्यों नहीं इसकी इच्छा पूरी की जाय!" यह निश्चय करके उन्होंने वचन दिया कि वे उसकी आखिरी इच्छा पूरी करेंगे। परन्तु उन्होंने कहा कि उस इच्छा के कारण मौत की सजा रद्द नहीं होनी चाहिये और सरकार का खर्च अवश्य कम होना चाहिये।

"मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। मेरी यही इच्छा है कि मुझे फाँसी पर चढ़ाने

के लिए आपकी एक दमड़ी न खर्च हो। इस नई रस्सी पर क्यों पैसा खर्च करते हैं? मुझे एक पुरानी रस्सी लाकर दीजिये। मैं अपने आप उससे फाँसी लगा लूँगा। जो पैसा आप फाँसी लगानेवाले को दे रहे हैं वह भी बचेगा।" उसने कहा। सब को सन्तोष हुआ।

टिल ने गले में से फन्दा निकाल लिया। उसे फाँसी के खम्भे से नीचे आने दिया गया। उसके हाथ में एक पुरानी रस्सी दी गई। उसने नगरपालको से कहा-"कृतज्ञ हूँ। मुझे फुरसत मिलते ही यानी जब हाथ खाली होंगे, मैं इस रस्सी से अपने को फाँसी दे दूँगा।" कहता वह जमसमूह में घुस गया। उसकी सूझ बूझ देखकर बहुत से लोग सन्तुष्ट हुए।

*   *   *

टिल की प्रसिद्धि जर्मनी से बाहर और देशों में भी पहुँची। पोलेन्ड देश का राजा हास्य प्रिय था। उसके यहाँ दो विदूषक थे। उसने टिल की अक्लमन्दी के बारे में सुनकर उसको अपने यहाँ निमन्त्रित किया



और कहा कि वह उसके विदूषकों से होड़ करे और उनको जीते।

टिल ने पोलेन्ड जाकर राजा के दर्शन किये। उसके साथ उसके दोनों विदूषक थे। राजा का ख़याल था कि वे टिल को आसानी से जीत लेंगे। उसने तीनों से कहा-"जो तुममें से सब से बड़ी इच्छा सोचेगा मैं उसको ईनाम दूँगा।"

राजा के विदूषकों में से एक ने कहा-"मेरी इच्छा सुनिये। सारा आकाश कागज हो जाये और समुद्र स्याही हो जाये तो उस कागज पर मैं इस स्याही से लिखूँगा कि मुझे कितना धन

चाहिये।" राजा ने हँसकर कहा-"बहुत ठीक।"

दूसरे विदूषक ने कहा-"जितना धन मेरा मित्र चाहता है, उसको रखने के लिए आकाश में जितने तारे हो उतने किले मुझे चाहिये।" राजा ने कहा-"यह तो और भी ठीक है।"

इसके बाद टिल ने राजा से कहा-"महाराज! मेरी ओर कोई इच्छा नहीं है, मैं चाहता हूँ कि मैं इनका वारिस बनूँ, और आप इन दोनों को फाँसी पर चढ़ा दें।"

राजा इस पर अट्टहास करने लगा, और उसने ईनाम टिल को दिया।

इस प्रकार टिल शरारतें करता बहुत दिन जिया। बुढ़ापे में मरा। मरते समय भी उसने शरारत न छोड़ी। जब वह मृत्यु शय्या पर था तो उसने इस प्रकार अपना वसीयतनामा लिखवाया। "मेरे पलङ्ग के पास जो लोहे का सन्दूक है, उसमें जो मेरी सम्पत्ति है, उसमें से एक भाग गिरजे को, दूसरा भाग मेरे मित्रों को, और तीसरा उस शहर को, जहाँ में मरूँ, मिले। मेरे मरने के ठीक एक महीने बाद ही नगर पालक मेरी सम्पत्ति का बँटवारा करें।"

इसके बाद टिल मर गया। टिल क्योंकि मशहूर तो था, और अपनी सारी सम्पत्ति में तीसरा हिस्सा नगर को दे रहा था। इसलिए नगर पालकों ने बड़े वैभव के साथ टिल का अन्त्येष्टि संस्कार किया। बहुत रुपया लगाकर उसकी सङ्गमरमर की मूर्ति भी बनवाई।

एक महीना बीत गया। अधिकारियों ने आकर जब सन्दूक खोला, तो उसमें सिवाय रोड़े कङ्कड़ों के कुछ न था।





अंगुलीमाल को उसके माता-पिता ने जङ्गल में सब जगह खोजा, पर कहीं उसका पता न लगा। राजा ने वचन तो दिया था कि वह अपनी सेना के साथ जाकर अंगुलीमाल को मार देगा। पर बस्तुतः जब जाने का समय आया तो वह घबराने लगा। इसलिए वह बुद्ध के पास गया। वह उनके पैरों पर पड़ गया।

"राजा! क्या हो गया? क्या बिम्बसार ने तुमसे झगड़ा किया है? विशाल नगरवालों ने या किसी और ने तुम पर हमला किया है? तुम पर क्या आपति आई है?" बुद्ध ने राजा से पूछा।

"ये कुछ भी नहीं। मैं हत्यारे अंगुलीमाल को पकड़ने बन में जा रहा हूँ।" राजा ने कहा।

"यदि वह भिक्षु हो गया हो तो क्या करोगे?" बुद्ध ने पूछा।

"यथोचित आदर करूँगा।" राजा ने उत्तर दिया। पर उसने कभी कल्पना न की थी कि उस जैसे पापी को बुद्ध अपने शिष्य वर्ग में भरती करेंगे। पर जब राजा को मालूम हुआ कि वह डाकू बिहार में ही था, तो वह पसीना पसीना हो गया। उसे कुछ न सूझा।



"राजा, तुम्हारे भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है।" बुद्ध ने उसको आश्वासन दिया।

"वह कहाँ है, कृपया मुझे बताइये।" राजा ने कहा।

उसने अंगुलीमाल के सामने खड़े होकर अपनी कीमती चादर निकालकर उसे दे दी। परन्तु अंगुलीमाल ने उसे नहीं लिया।

"यह बहुत आश्चर्यजनक है। इसमें यह परिवर्तन कैसे आया?" राजा ने पूछा।

फिर अंगुलीमाल भिक्षापात्र लेकर अपने ग्राम में भिक्षा माँगने गया। उसे देखकर लोग डरकर भाग गये। किसी ने उसे भिक्षा न दी। वह भूख से मरा जा रहा था।

जब वह नगर वापस आया तो उसने देखा कि एक स्त्री प्रसव पीड़ा के कारण कराह रही थी। उसको उस स्त्री पर बहुत दया आई। वह व्यक्ति, जिसने ९९९ आदमियों की हत्या की थी, बुद्ध के अनुचर होने के बाद एक स्त्री की प्रसव पीड़ा देखकर पिघल-सा गया।

बिहार में जाकर उसने बुद्ध से उस स्त्री के बारे में कहा।

"इस जन्म में अगर मैंने जान-बूझकर किसी प्राणी पर हिंसा नहीं की है तो इस स्त्री का सुखपूर्वक प्रसव हो; यह प्रमाण करके कहो। उसका प्रसव हो जायेगा।" बुद्ध ने कहा।

"मैंने तो बहुतों की हत्या की है। असत्य प्रमाण नहीं कर सकता।" अंगुलीमाल ने कहा।

"सत्य है। पर तुमने हत्यायें इस जन्म में नहीं की है। मेरे पास आने के बाद तुम्हारा एक और जन्म हुआ है। तुम असत्य प्रमाण नहीं कर रहे होगे।" बुद्ध ने कहा।

अंगुलीमाल नगर वापस गया। प्रसव पीड़ा से व्याकुल स्त्री के पास जाकर उसने बुद्ध के कथनानुसार सत्य प्रमाण किया। तुरन्त उस स्त्री का प्रसव हो गया। जहाँ उस स्त्री का प्रसव हुआ था, वहाँ एक भवन बनाया गया। रोगी स्त्रियाँ जब भवन में कदम रखती, तो अंगुलीमाल के प्रभाव से उनके रोग ठीक हो जाते।

अंगुलीमाल उनको देखकर बहुत दुःखी होता जो उसे देखकर डर जाते और उसे भिक्षा नहीं देते। पुरानी हत्याओं के बारे में याद करके भी वह बहुत पछताता। जिनको उसने मारा था, वे तरह तरह से गिड़गिड़ाते, दया माँगते, कहते कि यदि वे मार दिये गये तो उनके बच्चे अनाथ हो जायेंगे। उनकी बातें याद करके अंगुलीमाल बिह्वल और चिन्तित हो उठता। जब वह इस तरह दुखित होता तो बुद्ध उसको आश्वासन देते-"उन सब को पूर्व जन्म का वृत्तान्त समझो।" पूर्वजन्म के बारे में सोचते रहना मुख्य नहीं है। मुख्य है आनेवाले जन्म से मुक्त होना।"

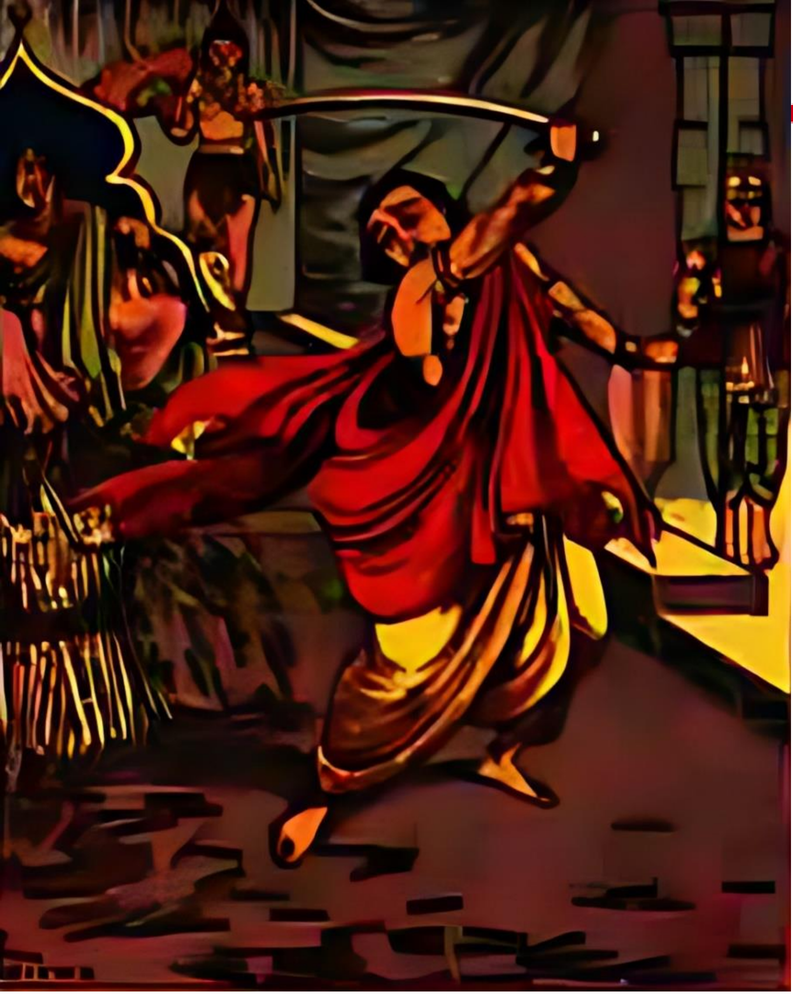
अंगुलीमाल की तरह और कई डाकू चोर, हत्यारे बुद्ध के उपदेश



सुनकर बदल गये। उन लोगों के जीवन में परिवर्तन आ गया और वे भी बुद्ध के शिष्य हो गये।

* * *

कुसीनर देश में बन्धुल नाम का बीर रहा करता था। वह मालवा देश के राजा का मजा था। तलवार, बाण, भाला, गदा आदि के उपयोग में जम्बुद्वीप में इससे बढ़कर कोई न था। जब यह जवान था, तो उसके मामा ने उसकी परीक्षा की। उसने साठ लोहे के सीखंचे रखे और उन सबका गठर बाँध दिया। फिर बन्धुल को बुलाकर कहा कि अगर तुमने तलवार की



एक चोट से इनको तोड़ दिया तो मैं तुम्हारा अपनी लड़की से विवाह करूँगा। यदि परीक्षा में हार गये तो मैं कोई और जामाता ढूँढ लूँगा।

बन्धुल को यह कोई बड़ा काम न लगा। उसने तरवार से गठर पर चोट की। चोट के कारण साठ बाँस और उनमें रखे, साठ सीखंचे टूट गये। जब सीखंचों की आवाज हुई, तो बन्धुल जान गया कि उसके मामा ने क्या किया था। उसको गुस्सा आया, उसने सोचा कि उसका अपमान करने के लिए ही उसके मामा ने वैसा किया था। राजकुमारी बधु मल्लिका से विवाह होने के बाद उसने अपने मामा से कहा-"मैं तुम्हारे देश में न रहूँगा, और कहीं जाकर जीवन बिताऊँगा।"

वह अब अपनी पत्नी के साथ जा रहा था, तो राजा आदि ने उसको रोकने की कोशिश की, पर कोई उन्हें न रोक सका।

कोशल देश का राजा, बन्धुल का साथी था; इसलिए बन्धुल उसके पास गया। राजा ने उसका आदर-सत्कार के साथ स्वागत किया। "यदि तुम जैसा बलशाली हो तो क्या मैं सारा जम्बुद्वीप न जीतूँगा।" कहकर उसने बन्धुल को अपना सर्वोच्च सेनापति नियुक्त किया। अब फोशल देश में राजा के बाद राजा के समान बन्धुल था। जब औरो को मालूम हुआ कि कोसल की बन्धुल मदद कर रहा था, तो वे घबरा गये।

बन्धुल की पत्नी भी साधारण न थी। उसमें पाँच हाथियों का बल था। उसके पास मेखला आभूषण था। वह बुद्ध की शिष्या थी। बन्धुल को बस यही चिन्ता थी, कि उसके सन्तान न थी। उसकी

अभिलाषा थी कि उसके बराबर बलशाली उसका एक पुत्र हो।

आखिर बन्धुल ने उसे छोड़कर एक और विवाह करने का निश्चय किया। "तुम अपने मायके चली जाओ!" उसने अपनी पत्नी से कहा।

यह सुनते ही उसको बहुत दुख हुआ। कोशल में रहकर वह बुद्ध के उपदेश सुन सफी थी। यदि वह मायके चली गई, तो उपदेश सुनने का मौका न मिलेगा। इसी चिन्ता में यह उस दिन बुद्ध का उपदेश सुनने गई।

बुद्ध ने उसकी कहानी सुनकर उससे कहा-"तुम बन्धुल के पास वापस चली जाओ।" यह समझ कि बुद्ध ने कुछ सोच कर ही यह सलाह दी होगी, बन्धुल ने अपनी पत्नी पुनः स्वीकार कर ली। उसके बाद के पहले की तरह प्रेम से रहने लगे।

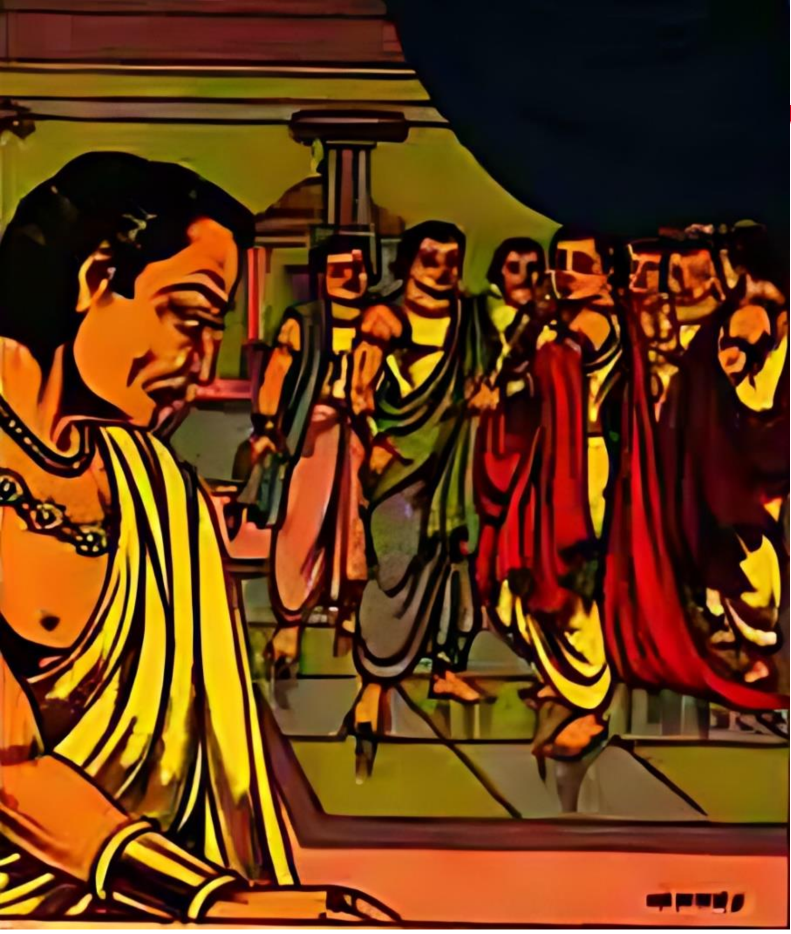
कुछ दिनों बाद बधु मल्लिका गर्भवती भी हो गई। उसने एक दिन अपने पति से कहा-"मैं उस झरने में स्नान करना चाहती हूँ, जिसमें लिच्छिवी राजकन्यायें स्नान करती है।" बन्धुल उसको लेकर तुरन्त



विशाल नगर गया। उस नगर दुर्ग के रक्षकों ने बन्धुल को रोकने का प्रयत्न न किया।

बन्धुल अपनी पत्नी को सीधे क्रीड़ा सरोवर में ले गया। उसके चारों ओर लोहे का जङ्गला था। उसने उसको अपनी तलवार से काट डाला। पत्नी के साथ जलक्रीड़ा करके वह घर के लिए निकल पड़ा।

जब यह लिच्छवी राजकुमारों को मालूम हुआ, तो उनको बहुत गुस्सा जाया। उन्होंने अपने राजा के पास जाकर कहा कि बन्धुल के आचरण से



अपमान हुआ था। उन्होंने शपथ ली कि जब तक उसे मारकर उसका सिर न लागे तब तक वे अन्न न छुएँगे। इस प्रतिज्ञा के बाद ५०० राजकुमार, रथों पर चढ़कर बन्धुल का पीछा करने के लिए तैयार हो गये।

"वह बहुत शक्तिशाली है। एक ही चोट में यह तुम सबको मार सकता है। जल्दबाजी न करो।" राजा ने उनको समझाया।

"वह आदमी ही तो है। क्या हम कोई स्त्रियाँ हैं?" राजकुमारों ने कहा।

राजा ने उनको सलाह देनी चाही कि माया आदि से उसको वश में करने का प्रयत्न करें। परन्तु उन्होंने उसकी न सुनी और रथों पर चढ़कर वे निकल पड़े।

बन्धुल ने, जो अपनी पत्नी के साथ चला जा रहा था, लिच्छवी राजकुमारों को पीछे से जाते देखा। उसने एक शक्तिपूर्ण बाण लिया और इस तरह छोड़ा कि वह पाँच सौ राजकुमारों के शरीरों में घुस जाये। फिर वह आगे बढ़ गया।

लिच्छिवियों ने यह भी न सोचा कि उनको चोट लगी थी। वे बन्धुल पर बाण छोड़ते हुए चिल्ला रहे थे- "डरपोक कहीं का, खड़े होकर हमसे युद्ध करो।"

"मैं मरो से युद्ध नहीं करता। तुम सब मर गये हो।" बन्धुल ने कहा। उनको इस बात पर विश्वास न हुआ।

"तुम अपने कवच निकालो तुम्हें दी सत्य मालूम हो जायेगा।" बन्धुल ने कहा। दो लिच्छवी अपने कवच उतारकर मर गये। यह देख भयभीत बाकी राजकुमार भी अपने घर गये और ज्यों ही उन्होंने अपने कवच उतारे त्यो ही वे मर गये।

बधु मल्लिका ने समय पर दो बच्चों को जन्म दिया। उसके बाद उसने प्रति वर्ष दो दो बच्चों को जन्म दिया। उसके बीस बच्चे हुए।

* * *

शुद्धोधन राजा की दूसरी पत्नी प्रजापति थी। सिद्धार्थ की माँ, मायादेवी उसको जन्म देने के सात दिन बाद गुज़र गई थी। प्रजापति ने अपने लड़के नन्द के पालन के लिए दाइयाँ रखी और सिद्धार्थ को उसने स्वयं पाला। इस प्रकार वह उनकी माँ बनी। सिद्धार्थ बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद जब कपिलवस्तु नगर आये, तब राजा शुद्धोधन के साथ प्रजापति ने भी बौद्ध-धर्म स्वीकार कर लिया था। प्रजापति और मायादेवी कोली राजा की पुत्रियाँ थी।

कपिलवस्तु और कोली नगर के बीच में रोहती नदी बहा करती थी। इस नदी पर बाँध बना कर दोनों नगर इसके जल का सिञ्चाई के लिए उपयोग किया करते। परन्तु एक वर्ष वारिश न हुई और नदी में पानी कम हो गया। नदी के दोनों



तरफ के खेतों के लिए काफ़ी पानी न था।

"पानी का पहले उपयोग करने का अधिकार हमारा है।" कपिलवस्तु की जनता ने कहा। कोली नगर की जनता ने भी यही कहा। दोनों में झगड़ा सा शुरू हो गया। दोनों तरफ के सौ सो आदमी इकट्ठे हुए और आपस में गाली गलोज करने लगे। शाक्यों ने तलवार के बल अपना अधिकार पाना चाहा। कोली नगरवासी भी पीछे न हटे। नदी तट पर दोनों तरफ की सेना एकत्रित हुई। दोनों देशों के परिपालक अपने लोगों को शान्त न कर पाये।

उसी समय बुद्ध उस तरफ आये। दोनों पक्षों ने बुद्ध के सामने युद्ध करना उचित न समझा। उन्होंने शस्त्र भी रख दिये।

बुद्ध नदी के किनारे एक ऊँची जगह बैठ गये। सब का प्रणाम स्वीकार करके उन्होंने पूछा-"क्या कोई मेला बेला है? क्यों इतने आदमी यहाँ इकट्ठे हुए हैं?"

"युद्ध करने आये हैं।" उन्होंने कहा।

"युद्ध क्यों?" बुद्ध ने पूछा।

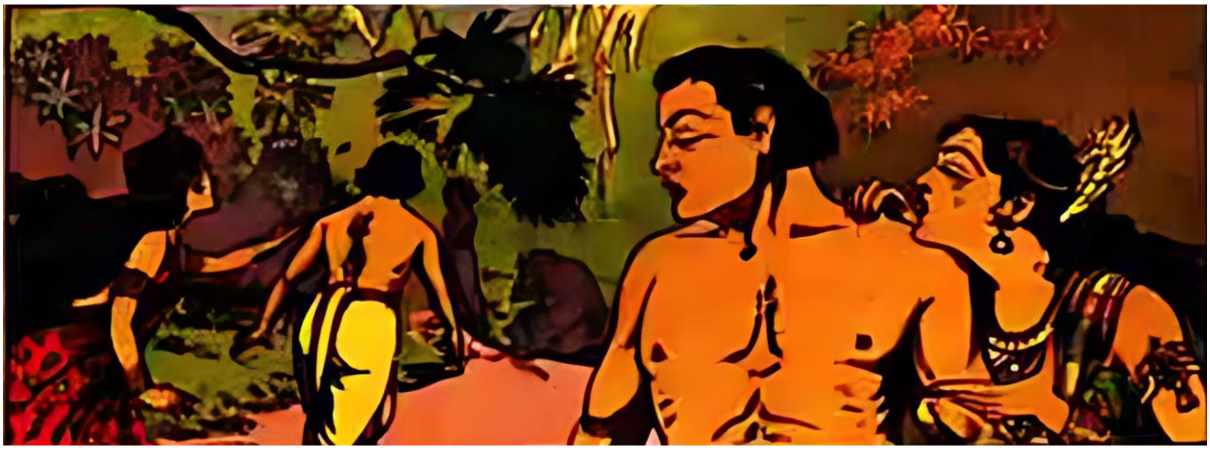
नायक राजा कह न पाये कि असली कारण क्या था। पर बुद्ध को किसानों द्वारा मालूम हुआ पानी के बारे में झगड़ा था।

"पानी का क्या मूल्य है? भूमि का मूल्य क्या है? प्राणों का मूल्य क्या है?" बुद्ध ने पूछा। वे सब मान गये कि पानी, भूमि की अपेक्षा प्राणों का मूल्य अधिक था।

फिर बुद्ध ने वहाँ एकत्रित लोगों को उपदेश दिया। उसके परिणामस्वरूप शाक्यों, और कोलीयों ने अपने उत्तम कुटुम्बों से २५० आदमी बुद्ध के पास उनके अनुचर बनाकर भेजे। बुद्ध इन ५०० आदमियों के साथ महावन बिहार में थोड़े दिन रहे। वे युवक कभी कभी अपने नगर आते जाते रहते। उनको गृहस्थ बनाने के लिए उनकी पत्नियों ने भरसक प्रयत्न किए। पर बुद्ध का प्रभाव उन पर इतना अधिक हो गया था कि उन्होंने अपना निश्चय न बदला।

फिर ५०० राजकुमारियों ने प्रजापति के पास जाकर कहा- "देवी, हमारे पति बौद्ध सन्यासी हो गये हैं। बिना पतियों के हम भला क्यों जिये? हम भी सन्यासिनी हो जायेंगी।"

(अभी है)





चीन देश में मात्साय नाम का एक गरीब किसान रहा करता था। वह बहुत सूझबूझ का था। इसलिए बड़े-बड़े जमीन्दार उससे घबराते और छोटे छोटे किसान उसे भगवान समझते। पीढ़ी दर पीढ़ी उसके पूर्वज खेतीबाड़ी करते आये थे, पर उनकी गरीबी न गई। इसलिए मात्साय ने निश्चय किया कि एक साल जमीन्दार को फसल का धान न देगा। फसल कटते ही उसने धान बेच दिया। उसने दो अच्छी मुरगियों को खरीदा। एक शिकारी को कुछ रुपया देकर उसने दो लोमड़ियाँ भी प्राप्त कर ली। दोनों लोमड़ियों में से एक को वह काली कोठरी में रखता और दूसरे को गले में रस्सी बाँधकर अपने साथ ले जाता।

एक दिन जमीन्दार अपने हिस्से का धान वसूल करने के लिए निकला। रास्ते मैं वह मात्साय से मिला। "आपका धान तैयार है, आप जब चाहें उसे ले जाइये।" मात्साय ने कहा।

"हाँ, मगर इसको क्यों साथ लिए फिर रहे हो? भाग नहीं निकलेगी?" जमीन्दार ने लोमड़ी को देखकर पूछा।

"जाने दीजिये। चली गई तो क्या हो गया? थोड़ा टहल आयेगी।" मात्साय ने यह कहकर लोमड़ी की ओर मुड़कर कहा-"तुम जाओ, अच्छी मुरगियाँ पकड़ लाओ।" उसने उसके गले की रस्सी खोल दी। लोमड़ी, रस्सी का ढीला होना था कि तीर की तरह भाग निकली।

"वह लोमड़ी ही तो है। क्या वह फिर तेरे हाथ आयेगी?" जमीन्दार ने पूछा।

"आप उसके बारे में नहीं जानते। कल दुपहर को आप हमारे घर खाने पर

आइये। आप आयेंगे इसी ख़याल से सुरगियाँ मँगा रहा हूँ।" मात्साय ने कहा। अगले दिन दुपहर तक मात्साय ने बहुत से पकवान तैयार करवाये। जमीन्दार उसके घर से कुछ दूर ही था कि उसको मसाले की सुगन्ध आई। भोजन की मेज पर तरह तरह से बनाया गया मुर्गी का माँस रखा हुआ था।

"मात्साय, तुम्हारी लोमड़ी कहाँ है? उसे भी ले आओ।" जमीन्दार ने कहा।

"क्या जल्दी है, पहले हम अपना खाना तो खा ले।" मात्साय ने कहा।

दोनों ने भोजन किया। तब जमीन्दार का ख्याल लोमड़ी पर गया। अगर बैसी लोमड़ी उसके घर हो, तो अच्छा रहेगा। यह सोच उसने कहा-"एक बार अपनी लोमड़ी तो ले आओ। देखें तो।"

मात्साय उठा। कमरे में बाँधी दूसरी लोमड़ी को रस्सी के साथ ले आया। "लोमड़ी तो अच्छी है। क्या इसे पाँच सौ तोले चान्दी के बदले बेच दोगे?" जमीन्दार ने पूछा।

मात्साय ने सिर घुमाते हुए कहा- "मेरी जिन्दगी इस पर निर्भर है।



अगर इसे बेच दिया तो भूखा मर जाऊँगा। जो कुछ धान मुझे देना है, या जो पुराना कर्ज देना है, उसे ले लीजिये। पर मैं लोमड़ी न बेचूँगा।" मात्साय ने कहा।

"मात्साय, हमें यह सब नहीं चाहिये। लोमड़ी ही चाहिये, अच्छा तो हजार तोला चान्दी ही ले लो। क्या कहते हो?" जमीन्दार ने कहा।

मात्साय ने लम्बी साँस छोड़कर कहा-"अगर आप जिद ही करने लग जायें तो हम क्या कर सकते हैं। मुझे कम से कम पन्द्रह सौ तोले चान्दी दीजिये।"



जमीन्दार उसकी इच्छा के अनुसार पन्द्रह सौ तोला चान्दी देकर लोमड़ी ले गया। उसने अपनी पत्नी से कहा-"एक लोमड़ी खरीद लाया हूँ। वह अच्छी मुरगियाँ चुराकर लाती है।"

"मैं कभी विश्वास नहीं कर सकती।" उसकी पत्नी ने कहा। जमीन्दार ने मात्साय की तरह लोमड़ी को सहलाया और कहा-"जाओ, तुम लोमड़ी पकड़ लाओ।" उसने उसके गले की रस्सी खोल दी। वह भाग गई। बहुत दिनों तक लोमड़ी वापस न आई तो वह जान गया कि उसे धोखा दिया गया था। वह गुस्से से दान्त पीसता, साथ अपने दस आदमी लेकर मात्साय के घर गया। उसे पकड़वाकर उसे फटकारा-"अरे गधे कहीं के, मुझे ही धोखा देते हो? अगर तूने मेरी चान्दी मुझे वापस कर दी तो मैं आसानी से छोड़ दूँगा।"

"वह सब तो तभी खर्च हो गया था।" मात्साय ने कहा।

"लाठियों से पीट पीटकर इसे मार दो।" जमीन्दार ने कहा। तब पाला गिर रहा था और बड़ी सरदी थी।

"अगर अब इसे मार भी दिया गया तो इसको गाड़ा नहीं जा सकता। अगर कल मारा जाय तो अच्छा होगा।" जमीन्दार के आदमियों ने कहा।

"ऐसा ही करो, रात भर इसे सरदी में मरने दो। इसके बदन पर मामूली कपड़े ही रहने दो। कोल्हू के पत्थर से बाँधकर रखो।"

मात्साय के घर को बाहर पत्थर से बाँधकर सब चले गये। पाले और सरदी के कारण मात्साय की हालत बुरी हो रही थी। वह सरदी से बचने के लिए कोल्हू का पत्थर धकेलना लगा। इस तरह करने से उसके शरीर से पसीना बहने लगा।

"वह अब तक मर गया होगा, जाकर देखो।" जमीन्दार ने अपने आदमी को कोल्हू के पास भेजा। उसने वापस आकर आश्चर्य के साथ कहा-"हुजूर! उसका मरना तो अलग वह तो पसीना बहाता हाँफ रहा है।"

"इसमें जरूर कोई न कोई भेद है। उसे मालूम करके ही उसे मारेंगे।" जमीन्दार ने सोचा। उसने उसके पास जाकर कहा-"मात्साय, इतनी सरदी में तुम्हें पसीना कैसे आ रहा है?"

अगर व्यर्थ किसी निरपराधी को दण्ड दिया जाय तो क्या होगा? मैंने जो लोमड़ी आपको दी थी, वह सचमुच महिमावाली थी। आपने उसे गुस्सा दिला दिया होगा। हो सकता है कि आपके घरवालों ने उसकी महिमा पर विश्वास न किया हो। अगर उसे यह मालूम हो गया तो वह वापस न आयेगी।" मात्साय ने कहा।

"हाँ, हो सकता है, कुछ ऐसा हुआ हो। आखिर तुम्हारा रहस्य क्या है? इतनी सरदी में तुम्हें पसीना क्यों आया?" जमीन्दार ने पूछा।



"जो आपके सामने हैं, आप उसे भी नहीं देख पा रहे हैं। मैंने जो कुड़ता पहन रखा है, उसमें महिमा है। इसको पहनने से सरदी में गरमी और गरमियों में सरदी लगती है।" मात्साय ने कहा।

"क्या इसे पाँच सौ तोले चान्दी के लिए बेचोगे?" जमीन्दार ने पूछा।

"हमारे बाप दादाओं के जमाने से हमारे पास चला आ रहा है। मैं चाहे आप कुछ भी दें, न बेचूँगा।" मात्साय ने कहा।

"यह मुझे चाहिए। हज़ार तोले चान्दी दूँगा।" जमीन्दार ने कहा।



"क्योंकि आप माँग रहे हैं, तो मुझे दो हजार तोले चान्दी दीजिये। अगर आपको मैंने इसे दे दिया तो मैं सरदी के कारण मर जाऊँगा।" मात्साय ने कहा।

जमीन्दार ने जितना उसने माँगा उतना दे दिया। वह कुड़ता लेकर पर गया। उसे धुलवाया। फिर जाड़े में वह कुड़ता पहनकर अपने ससुराल गया। एक तो खूब जाड़ा, फिर उसे देख औरों ने मजाक भी किया, वह और तङ्ग आ गया।

जमीन्दार जान गया कि मात्साय ने उसे फिर धोखा दिया था। इस बार उसने उसे मरवाने का निश्चय किया। उसके आदमी मात्साय को बाँधकर लाये। इस बार जमीन्दार उसको एक बोरे में बाँधकर समुद्र के किनारे एक टीले पर ले गया। वहाँ एक पेड़ था। उसकी टहनी समुद्र पर झूल रही थी। बोरे को उस टहनी से बाँध दिया। जमीन्दार ने नौकर से कहा-"अरे, उस टहनी को काट दो। इसका पिण्ड छूट जायेगा।" नौकर ने कुछ देर तो टहनी काटी। फिर उसने कहा-"जी, भूख लग रही है। खाना खाकर फिर इसे काटूँगा।"

"मुझे भी भूख लग रही है। भोजन खाकर फिर आयेंगे। अब यह कहाँ जायेगा?" जमीन्दार ने कहा।

उनके चले जाने के बाद मात्साय चिल्लाने लगा-"अब मुझे उतारो।" इतने में जमीन्दार का ससुर अपनी लड़की को देखने उस तरफ आ रहा था। मात्साय का चिल्लाना सुन, वह चिल्लाया-"कौन है यह?"

तुरन्त मात्साय ने उसकी आवाज पहचान ली। वह जानता था कि वह कुबड़ा था। उसने उससे कहा-"कोई भगवान की

तरह आये हैं, मुझे उतारिये। मेरी पीठ सीधी हो गई है।"

"अरे भाई, कुबड़ापन कैसे गया?" जमीन्दार के ससुर ने पूछा।

"शायद आप नहीं जानते। इस बोरे में बैठने से कुबड़ापन चला जाता है। मुझे उतारिये, आपको ही पता चल जायेगा। मेरे लोगों को अब तक आ जाना चाहिए था। न मालूम क्यों नहीं आये हैं। अगर इस बोरे को ठीक समय पर इसके मालिक को न पहुँचाया तो दे घण्टे के लिए सौ तोले चान्दी कान पकड़कर लेते हैं।"

"तो यह बात है? मुझे भी कुबड़ापन है। मुझे भी थोड़ी देर इसमें बैठने दो। तुम्हें सौ तोला बान्दी मैं ही दे दूँगा।" जमीन्दार के ससुर ने कहा।

कुछ भी हो मात्साय बोरे में से निकाला गया। जमीन्दार के ससुर को उसमें बिठाकर फिर उसे टहनी पर टाँगकर वह चलता हुआ। इसके बाद जमीन्दार अपने आदमियों के साथ वहाँ आया और उसने टहनी को कटवाकर समुद्र में डलवा दिया।

थोड़े दिन गुजर गये। एक दिन जमीन्दार मात्साय के घर की ओर



आया। जमीन्दार उसे देखकर हैरान रह गया। "तुम तो मर गये थे न? फिर यहाँ कैसे आये?" उसने पूछा।

"यह जान लीजिये कि भले लोग कभी नहीं मरते हैं। मेरे समुद्र में गिरते ही समुद्र के राजा के दूत मुझे पकड़कर ले गये। समुद्र के राजा ने मुझे दाबत दी, और मुझे वहीं रहने के लिए कहा। उसने मेरी एक अप्सरा से शादी भी कर दी। वहाँ सब अप्सरायें हैं। जहाँ देखो वहाँ सोना है। रत्न हैं। वहाँ के रहनेवालो का खाने पीने के सिवाय कोई काम

नहीं है। मेरे जैसे काम करनेवाले का भला मन वहाँ कैसे लगता? इसलिए मैंने राजा से कहा कि मैं चला जाऊँगा। उन्होंने मना किया, पर मैंने कहा कि मैं जाकर ही रहूँगा। उन्होंने कहा कि कभी कभी आते रहना, अगर कोई दोस्त हो, तो उन्हें भी लेते आना। जब मैंने अपनी पत्नी से आने के लिए कहा तो उसने उस संसार को छोड़कर आने से इनकार कर दिया।" मात्साय ने कहा।

"यह तो निरा मूर्ख है। अगर मैं होता तो वहाँ की सब स्त्रियों से शादी कर लेता और राजा को गद्दी से हटाकर स्वयं गद्दी पर बैठता।" अमीन्दार ने सोचा। उसने मात्साय से कहा-"एक बार मुझे उस संसार में ले जाओ।"

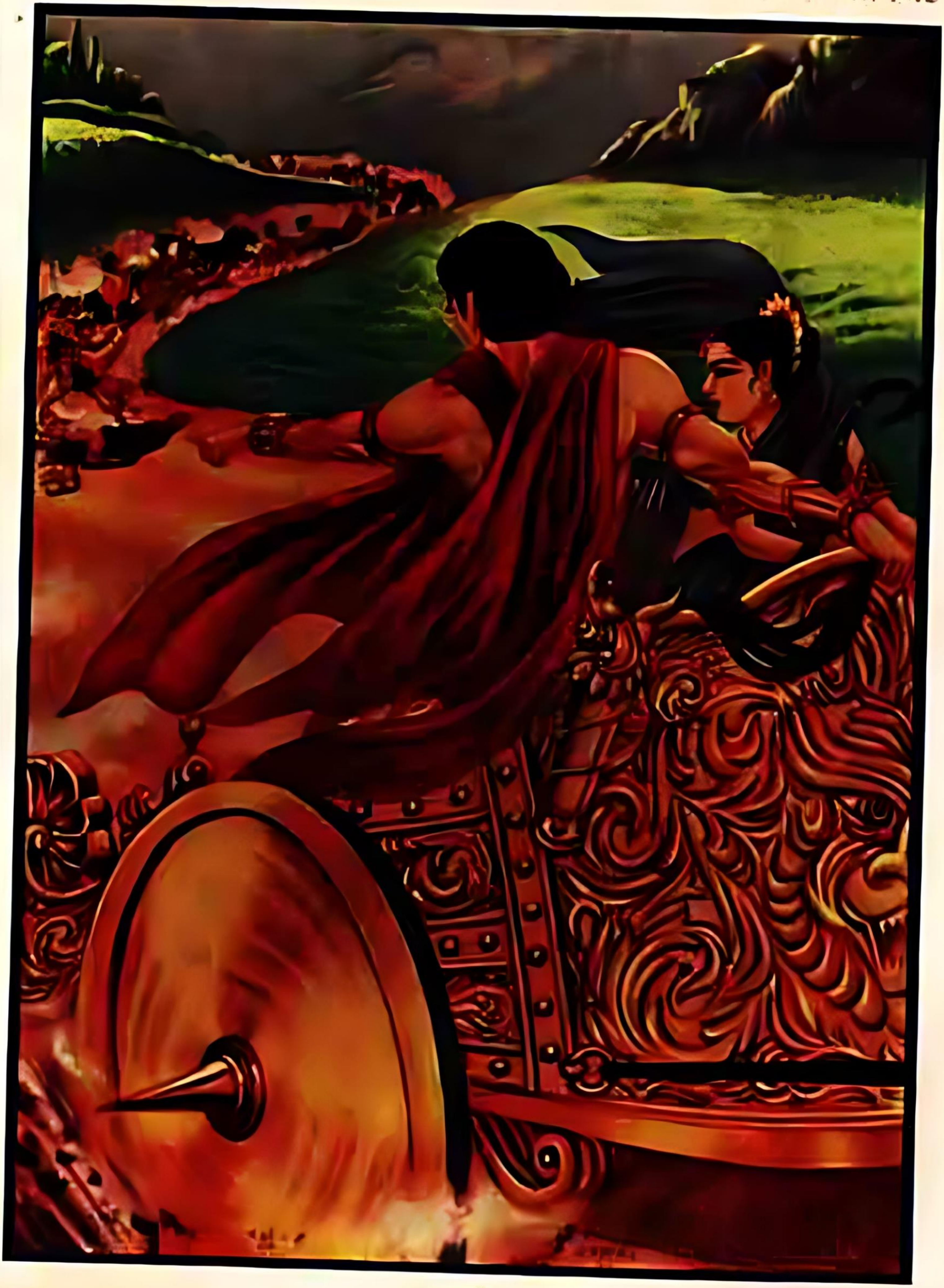
मात्साय पहिले तो नहीं माना, फिर मान गया। "आप यह बात किसी से न कहिये। नहीं तो सब ले जाने के लिए मुझे तङ्ग करने लगेंगे। दो नाव कल सवेरे मैं तैयार रखूँगा।" मात्साय ने कहा।

अगले दिन उसने एक लकड़ी की नाव को और दूसरी चीनी मिट्टी की नाव को समुद्र के किनारे रखा। जमीन्दार को उसने उसके आते ही चीनी मिट्टी की नाव पर चढ़ा दिया, और स्वयं लकड़ी की नाव पर चढ़ गया। दोनों कश्तियों के समुद्र में बहुत दूर चले जाने के बाद मात्साय ने अपनी किश्ती पर एक डण्डा मारा। "इसकी आवाज सुनकर समुद्र के राजा के दूत आयेंगे।" परन्तु कोई न आया।

जमीन्दार देरी बर्दाश्त न कर सका। "मेरी नाव पर मारो, ऊँची आवाज होगी।" मात्साय ने जब जोर से पीनी की मिट्टी की किश्ती पर डण्डा मारा तो यह टूट गयी और जमीन्दार समुद्र में डूब गया।



CHANDAMAMA (Hindi) MARCH 1960 Regd. No. M. 5452



बुद्ध चरित्र